षष्ठ अध्याय

भक्ति, अध्यात्म और साधना

भक्ति , अध्यात्म और साधना

जैन भक्ति का मूल स्वर आध्यात्मिक है । इसलिए प्राचीन साहित्य से ले कर हिन्दी के पद साहित्य तक भक्ति के सन्दर्भ में आध्यात्मिकता की ही प्रखरता दिखाई देती है ।

आध्यात्मिकता का विकास साधना में है । वही निःश्रेयस का मार्ग है । इसी पथ पर चल कर मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जैन परम्परा में भक्ति का प्रारम्भ अध्यात्म की भूमि पर होता है और उसका विकास साधना के शिखर के रूप में होता है । भक्ति की भूमि पर जिसके चरण पड़ गये, उसका मोह भंग होना निश्चित है और मोह भंग होते ही भक्ति का राजपथ तेजी से मोक्ष महल की ओर दौड़ता नजर आने लगता है । भक्त की आध्यात्मिक यात्रा आत्मसाधना में परिणत हो जाती है । अब उसे मार्ग से अधिक गन्तव्य दिखाई देने लगता है और वह तेजी से उस ओर बढ़ चलता है ।

भक्ति के इस आध्यात्मिक आधार को आचार्यों ने बहुत सरल ढंग से स्पष्ट किया है । प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है । दुःख से वह दूर भागता है । सुखी होना ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य है । इसलिए वह इस दिशा में प्रयत्न करता है । साधन-सामग्री जुटाता है किन्तु इस सबके बाद भी वह पूर्ण सुखी नहीं हो पाता । क्षण भर के सुख के बाद फिर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता है । जिसे या जिन साधनोंमें वह सुख देखता है उनकी अन्तिम परिणति उसे दुःख में डुबो देती है । इसका कारण क्या है ? आखिर ऐसा क्यों होता है ? दुःख कहां है ? जीव के सारे प्रयत्न निष्फल क्यों हो जाते हैं ? इन प्रश्नों का समाधान जहां से आरम्भ होता है, वहींसे अध्यात्म का झरना फूटता है । वहीं से भक्ति की निर्झरणी का उद्गम होता है ।वहींसे उसकी चरम सुख की वास्तविक साधना आरम्भ होती है । व्यक्ति को अपनी भूल का, अपने अब तक के निरर्थक प्रयत्नों, कार्यों का बोध हो जाता है । वह काललब्धि के कारण या सुगुरु के उद्बोधन से यह जान लेता है कि अब तक की असफलताओंका मूल कारण आत्मविस्मृति

है। जिस प्रकार मदिरा पी कर व्यक्ति आत्मविस्मृत हो जाता है, उसी प्रकार यह प्राणी भी अनादिकाल से मोह मदिरा को पी कर अपने शुद्ध आत्म स्वभाव को भूल रहा है। इस आत्म-विस्मृति के कारण वह पर पदार्थों में राग करता है। इसी के कारण आत्मस्वातन्त्र्य को भूल कर परमुखापेक्षी बनता है और अपनी विभिन्न ऐहिक ऐषणाओं की पूर्ति के लिए देवताओं की शरण खोजता है। उनकी कृपादृष्टि को सर्वार्थ साधक वरदान मानता है और सकोप भृकुटि को संहारक अभिशाप।

यह भी आत्म-विस्मृति ही है, जिसके कारण यह प्राणी जाति, कुल, बल, ऋद्धि तथा प्रतिष्ठागत वैषम्य के कारण एक आत्मा से दूसरे आत्मा के बीच अन्तर मानता है। आत्मविस्मृति के कारण ही यह प्राणी अनादि काल से दु:खों की ज्वाला में झुलस रहा है।

जब यह तन्द्रा टूटती है, जब मोह नींद की खुमारी उतरती है तो व्यक्ति को अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगता है। वह आलोचना और प्रत्याख्यान करता है। आत्मा के क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारी भावोंको छोड़ने का प्रयत्न करता है। आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करता है तथा अपने आराध्य के ध्यान और साधना के जिस रूप में लीन हो कर कर्म शत्रुओंको जीता, संसार सागर को पार किया, और मोक्ष पाया, उसी ध्यान और साधना में प्रवृत्त होता है।

आगे के पृष्ठों में क्रमश: आलोचना और प्रत्याख्यान, आत्मस्वरूप और आत्मानुभव, साधना, ध्यान और योग का विवेचन हिन्दी पद साहित्य के आलोक में करेंगे।

आलोचना और प्रत्याख्यान

निरन्तर चेतावनी, उद्बोधन और सुगुरु की सीख से प्राणी की भ्रम निद्रा टूटती है और वह नि:श्रेयस के पथ पर कदम रखता है तो उसे अपने अब तक किये असत् कार्यों पर पश्चात्ताप होता है। वह महसूस करता है कि अब तक का जीवन उसने व्यर्थ

ही गमा दिया । जो सत्कार्य करने चाहिए थे, वे तो किये नहीं, उसके विपरीत असत्कार्यों में प्रवृत्त रहा । वह आत्मालोचन करता है । अपने अनुचित कार्यों पर पश्चात्ताप करता है, फिर कभी ऐसे कार्यों को न करने का निश्चय करता है और स्वयं को सन्मार्ग पर आगे बढ़ाता है ।

प्राचीन ग्रन्थों में आत्मालोचन का विशेष महत्व बताया गया है । आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान का आचार्यों ने विस्तार से वर्णन किया है।

कुन्दकुन्द ने प्रत्येक भक्ति के अन्त में लिखा है कि मैंने अमुक भक्ति विषयक कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूं -- "-----भत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं ----- ।" (भत्तिसंगहो) ।

आत्मशोधन या आत्मविकास की दृष्टि से आलोचना और प्रत्याख्यान के महत्व के कारण भक्ति में भी इसे महत्वपूर्ण स्थान मिला ।

आलोचना गुरु के समक्ष भी की जाती है और साधक व्यक्ति स्वयं भी आत्मालोचन करता है । अपने दोषोंको न छिपा कर गुरु के समक्ष निष्कपट भाव से उन्हेंकह देना, उनका पश्चात्ताप करना आलोचना या प्रतिक्रमण है तथा आगे उस प्रकार के दोष न करने का निश्चय करना या व्रत लेना प्रत्याख्यान है ।

भक्ति के माध्यम से आत्म-विकास के पथ पर बढ़ रहा पथिक आलोचना और प्रत्याख्यान दोनोंके महत्व को समझता है । इसी कारण हिन्दी के जैन कवियों ने आलोचना और प्रत्याख्यान विषयक भी अनेक पदोंकी रचना की है ।

आलोचना का सबसे बड़ा विषय तो यही है कि अब तक व्यक्ति भ्रम में झूला रहा और अपने स्वरूप को न समझने के कारण संसार में भटकता रहा । द्यानत राय जब कहते हैं "हम तो कबहुं न निज घर आये "तब उन्हें बीते हुए जीवन का चित्र प्रस्तुत करने में भी हिचक नहीं होती । वे साफ कहते हैं कि ऐसा कुछ तो किया ही नहीं जिससे "शिवसुख" हो ।

आलोचना और प्रत्याख्यान के साथ ही आत्मशोधन के लिए क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारी भावों को त्यागने की बात भी कही गयी है ।

आगे के पृष्ठोंमें संक्षेप में इसका विवेचन करेंगे ।

कुमुदचन्द्र कहते हैं कि मैंने तो नर-भव व्यर्थ ही गवां दिया । न तो मैंने विधिपूर्वक जप, तप और व्रत ही किया और न ही कोई भलाई का काम किया । लोभ से कपट की कूटनीति करके विषयों में पूरी तरह लिप्त हो गया । बदमाश तथा कुटिल और दुष्टों की संगति में बैठा और साधुओंकी संगति से विमुख रहा । कृपण हो कर कुछ दान नहीं दिया और धन संग्रह में लगा रहा । यौवन काल में परस्त्री सेवन किया । अन्त समय कोई भी काम नहीं आता । मैंने व्यर्थ लोगों के लिए पाप कमाया। मुझसे बहुत बड़ी गलती हुई कि मैंने प्रभु के चरणों का यश गान नहीं किया अर्थात् प्रभु का भजन नहीं किया --

मैं तो नरभव बादि गमायो ।
न कियो तप जप व्रत विधि सुन्दर,काम भलो न कमायो ।
विकट लोभ तें कपट कूट करी, निपट विषै लपटायो ।
विटल कुटिल शठ संगति बैठो, साधु निकट विघटायो ।
कृपण भयो कछु दान न दीनों, दिन दिन दाम मिलायो ।
जब जोवन जंजाल पड्यो तब, परत्रिया तनु चित लायो ।
अंत समै कोउ संग न आवत झूठहिं पाप लगायो ।
कुमुदचन्द्र कहे चूक परी मोही, प्रभु पद जस नहीं गायो ।।[१]

रूपचन्द कहते हैं कि मेरा जन्म व्यर्थ ही चला गया । धर्म, अर्थ और काम इन तीनों में से एक को भी मैंने प्राप्त नहीं किया । पूर्व जन्म में शुभ कार्य न करने के फलस्वरूप मैं सब प्रकार से हीन रहा । इस जन्म में भी इस प्रकार के कार्य किए कि कुछ पुण्य नहीं कमाया । विषयों में फंस कर घोर कष्ट सहन किये फिर भी उन से विरक्त नहीं हुआ और अब भी चेतता नहीं हूं --

---

१- हिन्दी पद संग्रह, पद ९७

जनमु अकारथ ही जु गयौ ।
धरम अरथ काम पद तीनौं एकौ करि न लयौ ।
पूरब ही सुभ करमु न कीनौं, जु सब विधि हीनु भयौ ।
औरौ जनमु जाइ जिहि लहि विधि सोई बहुरि ढयौ ।
विषयनि लागि दुसह दुख देखत, तबहुं न तनकु नयौ ।
रूपचंद चित चेतु नाहीं, लाग्यौ हो तोहि दयौ ।।[२]

रूपचन्द को अपने किए पर भारी पश्चात्ताप हो रहा है । वे स्वयं को सम्बोधित करते हुए अपनी आलोचना इस प्रकार करते हैं --

तूने यह मनुष्य जन्म व्यर्थ ही गवां दिया । कितने ही पुण्य कर्मों के कारण इस नर-भव की प्राप्ति हुई, किन्तु निन्दनीय कर्मों के कारण तूने इसे नष्ट कर दिया । भाग्योदय से अमृत को प्राप्त करके अपने पैरों का मैल धोने में उसका दुरुपयोग किया । चिन्तामणि कौए को उड़ाने के लिए समुद्र में फेंक दी तथा हाथी पर ईंधन ही ढोता रहा । इस प्रकार अज्ञानपूर्ण कार्यों में लिप्त रहा । धन की तृष्णा तथा स्त्री की प्रीति में झूला रहा । धर्म से मुंह मोड़ लिया । सुख के लिए विषयों का सेवन किया तथा घृत के लिए पानी को बिलोता रहा । मोह की मदिरा पी कर मतवाला हो कर घूमता रहा तथा कामदेव रूपी सर्प के विष को पीता रहा । सत्-गुरु के सावधान करने पर भी तू नहीं संभला, सावधान नहीं हुआ बल्कि मोह की नींद में निश्चिंत हो कर सोता रहा --

मानुस जनमु वृथा तैं खोयौ ।
करम करम करि आइ मिल्यौहो, निंद करम करि करि सु विगोयौ ।
भाग विसेस सुधा रस पायो, सो ले चरननि कौं मल धोयौ ।
चिंतामनि फेंक्यौं बायस को, कुंजर भरि भरि ईंधन ढोयौ ।
धन की तृषा प्रीति बनिता की, भूलि रह्यौ वृष तैं सुख गोयौ ।
सुख के हेत विषय-रस सेये, घिरत के कारन सलिल विलोयौ ।

२- हिन्दी पद संग्रह, पृष्ठ ५३

माति रह्यो प्रासाद मद मदिरा, अरु कन्दर्प सर्प विष भोयो ।
रूपचन्द चेत्यो न चितायो, मोह नींद निश्चल ह्वै सोयो ।।[३]

धानतराय कहते हैंकि हमें मोक्ष सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है । मुक्ति को प्राप्त करने के जितने भी उपाय हैं, जितने भी कार्य हैं, उनमें से हमने कोई भी कार्य नहीं किया । हमने मुनिवर को दान नहीं दिया तथा जिन भगवान् की पूजा भी नहीं की ।पंच परमेष्ठियों की वन्दना नहीं की तथा कोई तप भी नहीं किया । आर्त-रौद्र ध्यान को त्याग कर धर्म तथा शुक्ल ध्यान नहीं किया । आसन धारण कर आशा को मजबूत किया तथा विषय कषायों का सेवन किया । मन, वचन काय से योग में स्थिर हो कर कभी आत्म-तत्व को नहीं पहचाना । श्रावक तथा मुनि धर्म का पालन नहींकिया और समता भाव को नहीं अपनाया । शुभ कार्यों को करते हुए फल की अभिलाषा करता रहा और ममता बुद्धि के आधीन रहा । स्त्री तथा धन के लिए अनेक पाप कार्यों में प्रवृत्त रहा । तब भी तृष्णा पूरी नहीं हुई । झूठ तथा कुशील आदि दुर्गुणों को दृढ़ता से पकड़े रहा और अदत्त वस्तु को ग्रहण किया सातों व्यसनोंमेंलिप्त रहा और मोह मद में लिपटारहा । स्व-पर भेद ज्ञान नहीं हुआ । जिनमार्ग को जाने बिना अनन्त काल व्यर्थ ही गवां दिया --

हमको कैसें शिवसुख होई ।
जे जे मुकत जानके कारण तिनमें को नहिं कोई ।
मुनिवर को हम दान न दीना नहि पूज्यो जिनराई ।
पंच परम पद बन्दे नाहीं तपविधि बन नहिं आई ।
आरत रुद्र कुध्यान न त्यागे धरम शुकल नहिं ध्याई ।
आसन मार करी आसा दिढ़ ऐसे काम कमाई ।।
विषय कषाय विनाश न हूआ मन को मार न कीना ।
मन वच काय जोग थिर करके आतमतत्व न चीना ।।
मुनि-श्रावकको धरम न धारयो समता मन नहिं आनी ।

३- हिन्दी पद संग्रह, पद ३६

झूम करनी करि फल अभिलाष्यो ममताछुध अधिकानी ।
रामा रामा धन धन कारन पाप अनेक उपायो ।
तबहु तिसना भई न पूरन जिनवानी यो गायो ।।
राग दोष परनाम न जीते करुना मन नहिं आई ।
झूठ अदत्त कुशील गह्यो विढ़ परिगृहसों लौ लाई ।।
सातौं विसन गहे मद धार्यो सुपरभेद नहिं पाई ।
यानत जिनमारग जाने बिन काल अनन्त गमाई ।। ४

यानत कहते हैं कि इस संसार रूपी महावन में भ्रमते-भ्रमते मैंने कभी भी सुख प्राप्त नहीं किया । पुद्गल तथा जीव (चेतन) को एक ही समझता रहा तथा भेद-ज्ञान प्राप्त नहीं किया । मन, वचन तथा काय द्वारा जीवहिंसा करता रहा तथा झूठ बोलता रहा । चोरी कर के सुखी हुआ तथा विषय-भोगों में लीन हो कर गर्वित हुआ । नरक गति में छेदन, भेदन आदि नाना प्रकार के कष्ट सहे फिर साधारण (तिर्यंच) योनि में आया । नर-भव में गर्भ-जन्म के दुःख सहे तथा अन्य कष्टों को भी सहन किया । देवयोनि में जा कर मरते समय व्याकुल हो गया । अब जिनवाणी सुन कर मेरे हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ । भव-भ्रमण रूपी पाप मल को मैंने बहा दिया । आदि तीर्थंकर आदिनाथ भगवान् तथा गुरु के चरणों में भक्ति भाव से मन को लगा दिया --

भ्रम्यो जी भ्रम्यो संसार महावन सुख तो कबहुं न पायो जी ।
पुद्गल जीव एक करि जान्यो भेद ज्ञान न सुहायो जी ।
मनवचकाय जीव संहारो झूठो बचन बनायो जी ।
चोरी करके हरष बढ़ायो विषय भोग गरबायो जी ।
नरकमांहि छेदन भेदन बहु साधारण बसि आयो जी ।
गरभ जनम नरभव दुख देखे देव मरत बिललायो जी ।
यानत अब जिन बचन सुने में भवमल पाप बहायो जी ।
आदिनाथ अरहन्त आदि गुरु चरन कमल चितलायो जी ।। ५

४- यानत पद संग्रह, पद ३१५
५- वही, पद ६४

आत्मालोचन करते-करते धानतराय को जब आत्मस्वरूप का भान होता है तो वे कहते हैं कि हम तो कभी भी अपने घर नहीं आये । आजतक हम अपनी आत्मा को नहीं पहचान सके । हमने दूसरों के घर घूमते हुए अनन्त काल बिता दिया और अनेक नाम भी हमारे रखे गये । इस प्रकार बदनाम होने पर भी हम अपने घर नहीं आये । हमने पर-पद को निजपद मान लिया और उसी पर-पद में आनन्द मानकर तन्मय हो गये । पर-पदार्थों की वैभाविक परिणति में फसे रहे । हमारा जो शुद्ध, बुद्ध, आनन्द-मय और सुन्दर चैतन्य स्वभाव था, उसका हमने कभी भूल कर भी चिन्तन नहीं किया । हमने अपने नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव-भव को ही अपनी आत्मा की परिणति समझी, उन पर्यायों में ही अपनी आत्मा की निजत्व बुद्धि मानते रहे । अपनी निर्मल अखण्ड, अतुल्य, अविनाशी आत्मा के गुणों का चिन्तन नहीं किया । अपने हित और अहित का विचार न करके मृग-तृष्णा की तरह पर पदार्थों के पीछे दौड़ते रहे । अब सद्गुरु के उपदेश से ही निज और पर के स्वरूप भेद का ज्ञान हो गया --

हम तो कबहुं न निज घर आये ।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धराये ।।
पर पद निज पद मानि मगन ह्वै पर परनति लपटाये ।
शुद्ध बुद्ध सुखकंद मनोहर आतम गुण नहिं गाये ।।
नर पशु देव नरक निज मान्यो परजयबुद्ध कहाये ।
अमल अखंड अतुल अविनाशी चेतन भाव न भाये ।
हित अनहित कछु समझ्यो नाहीं मृगजलबुध ज्यों धाये ।
धानत अब निज-निज-पर-पर है सद्गुरु बैन सुनाये ।।[६]

धानतराय पश्चाताप करते हुए कहते हैं कि हमारे इतने दिन निरर्थक चले गये, व्यर्थ ही नष्ट हो गये । हमने इन दिनों कुछ जप-तप आदि भी नहीं किया, धार्मिक क्रिया-कलापों से हम सर्वथा विमुख रहे । तन तथा धन को ही हम अपनी सम्पत्ति मानते रहे । कभी भी सांसारिक भोगों से विरक्त नहीं हुए --

---

६- हिन्दी पदसंग्रह, पद १२६

हमारे ये दिन यों ही गये जी ।
कर न लियो कछु जप तप जी कछु जप तप बहु पाप किमाहे नये जी ।।
तन धन ही निज मान रहे निज मान रहे कबहुं न उदास भये जी ।
दानत जे ह करि हैं करुना करि हैं करुना तेह जीव लेखे में लये जी ।।[७]

दौलतराम के पदों में आलोचना का स्वर भी आध्यात्मिकता लिये हुए है । वे कहते हैं -- हमने कभी भी अपना हित नहीं किया, सदैव अपना अहित करने वाले कार्यों की ओर प्रवृत्त हुए । सुकुल, सुदेव, सतगुरु तथा सत्संगति आदि हित करने वाले निमित्त कारणों को पा कर भी हमने उनका सदुपयोग नहीं किया । अपने अज्ञान से सबको गवां दिया । जिस प्रकार नाचता हुआ शिशु स्वयं नहीं देख पाता पर उसे देखने वाले प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार शास्त्र पढ़ कर केवल औरों को ही समझाते रहे स्वयं उसका सदुपयोग नहीं किया, उसके अनुसार आचरण नहीं किया । सुयश लाभ की चाह को नहीं त्यागा तथा अपनी बड़ाई सुन कर प्रफुल्लित हुए । विषयों को नहीं त्यागा और अपने पद में लीन नहीं हुए, स्व-स्वरूप को नहीं समझा । पर पदार्थों में अनुरक्त रहे, पर पदार्थों में परिणमन किया । पाप कार्यों को त्याग कर प्रभु के नाम को नहीं जपा तथा काम के बाण से दग्ध रहे । काम वासनाओं में लिप्त रहे । चेतन और तन दोनों भिन्न तत्व हैं । तन पर पदार्थ है यह जानते हुए भी अपने शरीर से प्रेम किया । हमारी यह भूल चिरकाल से होती हुई आई है । हम चिरकाल से यह भूल करते आ रहे हैं पर अब पछताने से कुछ भी नहीं होगा । अब सतगुरु ने हमें सच्ची सीख दी है कि सांसारिक भोगों को हम त्याग दें, तभी हमारा हित सम्भव है --

हम तौ कबहुं न हित उपजाये ।
सुकुल-सुदेव सुगुरु सुसंग हित, कारन पाय गमाये ।
ज्यों शिशु नाचत, आप न आचत, लखनहार बौराये ।
त्यों श्रुत वाचत आप न राचत, औरन को समझाये ।
सुजस लाहकी चाह न तज निज, प्रभुता लखि हरखाये ।

७- दानत पद संग्रह, पद ३१६

विषय तजे न रजे निज पद में, परपद अपद लुभाये ।
पापत्याग जिन जाप न कीन्हों, सुमनचाप तप ताये ।
चेतन तनको कहत भिन्न पर, देह सनेही थाये ।
यह चिर भूल भई हमारी अब कहा होत पछताये ।
दौल अजौं भवभोग रचौं मत, यौं गुरु वचन सुनाये ।।[८]

दौलतराम कहते हैं कि हमने कभी भी अपने निज गुण का चिन्तन नहीं किया। अपने सहज गुणों में परिणमन नहीं किया । तन को अपना मान कर तन सम्बन्धी दुःख सुख में व्याकुल और हर्षित हुए । शरीर को ही हमने सब कुछ समझा उसके गलन और मरण को अपना मान लिया । इस भ्रम रूपी भंवर में फंस कर हमने भव समुद्र में चिरकाल तक चतुर्गतियों के दुःखों को ही सहा । दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी अमृत को न पी कर हम विविध विषयों के विष को पीते रहे । सतगुरु ने दया करके हमें बार-बार सीख दी किन्तु हमने उनकी बातों को सुन कर भी उन पर अमल नहीं किया । बहिर्मुखी वृत्ति को हमने नहीं त्यागा तथा कभी भी अन्तर्मुखी हो कर निज स्वरूप का ध्यान नहीं किया । घर, सम्पत्ति, कामवासनाओं तथा स्त्री की आशा की अग्नि में जलते रहे । अचल, अनुपम, शुद्ध, बुद्ध चिद्रूपी आत्मा के गुणों का गान मुनिजनों ने किया । जो अपने चिदानन्द स्व-गुण में मग्न हो गये जिन्होंने आत्मानुभव कर लिया वही सच्चे सुखी कहलाये, उन्हीं का सुख चिरन्तन तथा अतीन्द्रिय है --

हम तो कबहुं न निजगुन भाये ।
तन निज मान जान तनदुखसुख मोहिलखे हरखाये ।
तनको गरन मरन लखि तनको धरन मान हम जाये ।
या भ्रम भौंर परे भवजल चिर चतुर्गति विपत लहाये ।
दरश बोधव्रत सुधा न चाख्यौ विविध विषय विष खाये ।
सुगुरु दयाल सीख दइ पुनि पुनि सुनि सुनि उर नहिं लाये ।
बहिरातमता तजी न अन्तर दृष्टि न ह्वै निज ध्याये ।

८- दौलत विलास, पद १०४

धाम-काम-धन रामा की नित आश हुताश जलाये ।
अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी सब सुखमय मुनि गाये ।
दौल चिदानन्द स्वगुन मगन जे तेजिय सुखिया थाये ।। ६

शुभचन्द्राचन्द आत्मालोचन करते हुए कहते हैं -- तूने अपने घर को नहीं पहचाना । अपने घर को भूल कर तू मोह उदय के कारण मिथ्या भ्रमजाल में भूला रहा । सांसारिक प्रपंचों से घिरा रहा । तू तो नित्य, अनादि, अरूपी सिद्ध के समान है, तू अपने स्वरूप को भूल गया । जड़ पुद्गल में रमण करते-करते तू सर्वगुण सम्पन्न शुद्ध,बुद्ध, चिदानन्दमय होते हुए भी मूर्ख बन गया । तन, धन, यौवन, पुत्र तथा पत्नी आदि को तूने अपना मान लिया । ये सब तो नश्वर और जड़ पदार्थ हैं । इनका नाश निश्चित है,ये स्थायी नहीं हैं। इस बात को तू भली प्रकार समझ ले । तेरा बाल्यकाल साथियों के साथ, यौवनकाल स्त्री के संग रमण करने में चला गया । वृद्धहोने पर तेरा शरीर शिथिल हो गया तथा अपने शरीर की सुधबुध भी तू भुला बैठा फिर धर्म तुझे कैसे याद रहता अर्थात् धर्म को भी तू भूल गया । अब जो आयु बची गई उसे व्यर्थ कर तू शेष आयु को संभाल कर अपना आत्म-हित साधन कर । निज स्वरूप को पहचान कर उसी में रमण कर । अन्य सभी वैभाविक परिणतियों को त्याग कर नित्य निज परिणति में परिणमन कर --

निज घर नाहिं पिछान्या रे, मोह उदय होने तैं मिथ्या भर्म भुलाना रे ।
तू तो नित्य अनादि अरूपी सिद्ध समाना रे ।
पुद्गल जड़ में रुचि भयो तू मूर्ख प्रधाना रे ।
तन धन जोबन पुत्र बधू आदिक निज माना रे ।
यह सब जाय रहन के नाहीं समझ सयाना रे ।
बालपने लड़कन संग जोबन त्रिया लवाना रे ।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब धर्म भुलाना रे ।

६- दौलत जैन पद संग्रह,पद ८१

गई गई अब राख रही हूं समझ सियाना रे ।
द्यानत महाचन्द बिचारिके निज पद नित्य रमाना रे ।।[१०]

विद्यासागर भी अपने बुरे कार्यों पर पश्चात्ताप करते हुए आत्मालोचना कर रहे हैं। वे कहते हैं -- मैंने यह अमूल्य नर-भव व्यर्थ में ही गवां दिया । रात-दिन कनक-कामिनी के लिये दीवाना हो कर मैंने सबसे बैर बढ़ा लिया । कनक-कामिनी के मोहजाल में फंस कर सब कुछ भूल गया । विषयों के फलसा कर उन्हीं में रम गया और स्त्री के मोहजाल में उलझ गया । यौवन मद के कारण कषाय तीव्र हो गये और परस्त्री सेवन में भी रत हो गया । विषयों का सेवन करते हुए मैंने व्रत संयम को त्याग दिया और लोभ में फंस गया । मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई कि कहने पर भी मैंने जिनराज की भक्ति नहीं की --

मैं तो या भव योंहि गमायो ।
अहनिशि कनक कामिनी कारण, सबहिसूं बैर बढ़ायो ।
विषयहि के फलुसाय के राच्यो, मोहनी में उरझायो ।
यौवनमद थे कषाय जु बाढ़े परत्रिया में चित लायो ।
बिन सेवत दया रस डारयो, लोभहि में लपटायो ।
चूक परी मोहि विद्यासागर कहे जिनगुण नहीं गायो ।।[११]

द्यानतराय स्वयं की आलोचना करते हुए कहते हैं कि संसार में रह कर मैंने अनन्त कष्टों को सहन किया, अनेक प्रकार के दुःख पाये । मैंने अपने हृदय में मिथ्याभाव को धारण किया और सम्यक्त्व को नहीं जाना । अनादि काल से मैं नरक और निगोद गतियों में रुल रहा हूं । मैंने बहुत बार देव और मनुष्य योनि में जन्म धारण किया । इन सबका (भव-भ्रमण) फल दुःखों का समूह है किन्तु मैंने इनका फल सुख-दायी समझा । मिथ्या भ्रम में फंस कर मैं सत्य व्यवहार को भूल गया । कुगति को

१०- हिन्दी पद संग्रह, पद ३३३
११- वही, पद ३५५

नष्ट करने वाली जिनवाणी का मैंने अध्ययन मनन नहीं किया । अब सम्यक्श्रद्धा के उदय से मेरे समस्त दुःख दूर हो गये हैं और मुझे अपूर्व सुख की प्राप्ति हुई --

बसि संसार में पायो दुःख अपार ।
मिथ्यामाव हिये धर्यो नहिं जानो सम्यकचार ।
काल अनादिहि हौं रुल्यौ हो नरक निगोद मझार ।
सुरनर पद बहुत धरे पद पद प्रति आतम धार ।
जिनको फल दुखपुंज है हो ते जानैं सुखकार ।
भ्रम मद पीय विकल भयो नहिं गह्यो सत्य व्योहार ।
जिनबानी जानी नहीं हो कुगति विनाशन हार ।
द्यानत अब सरधा करी दुख मेटि लह्यो सुखसार ।।[१२]

द्यानतराय आन्तरिक शुद्धि पर बल देते हुए कहते हैं कि मोह महान् कष्ट देने वाला है इसलिए इस विकार को त्याग दो । इसके फलस्वरूप प्राणी परायी वस्तु को अपनी मान कर उसके नष्ट होने में दुःखी होता है । जिस महीने, जिस दिन, जिस क्षण जिस जगह जिसका नाश होना है, जिसकी मृत्यु होनी है उसे सुर, नर और नाग लोक के देव आदि भी नहीं बचा सकते, यह बात सत्य है । संसार में नित्य ही कितने लोगों की मृत्यु होती है लेकिन राग न होने से उनके मरने से सबको दुःख नहीं होता । बालक के मरने पर धाय दुःख नहीं करती, किन्तु माता अनेक प्रकार से विलाप करती है, बहुत रोती है । चूहा को मारने पर बिलाव दुखी नहीं होता, किन्तु यदि सांप उसे मारता है तो क्रोधित होता है । जो ममता के मूल कारण मोह का नाश करते हैं वहीसच्चे ज्ञानी हैं --

रे भाई मोह महा दुख दाता ।
वसत विरानी अपनी मानै विनसत होत असाता ।
जास मास जिस दिन छिन विरियां जाको होसी घाता ।

१२- द्यानत विलास, पद ४१

ताकौ रास सकै ना कोई सुर नर नाग विख्याता ।
सब जग मरत जात नितप्रति नहिं राग बिना बिलाता ।
बालक मरै करै दुख धाय न रुदन करै बहु माता ।
पुत्र हनैं विलाव दुखी नहिं उरग हनैं रिसलाता ।
यानत मोह मूल ममता को नास करै सो ज्ञाता ।।[१३]

राग भाव के दुष्परिणामों का विवेचन करते हुए यानतराय राग वृत्ति को त्यागने की सलाह देते हैं ।वे कहते हैं कि हे मन ! तू राग भाव को त्याग दे क्यों कि राग की चिकनाई के कारण कर्म धूलि चिपट जाती है । राग कर्मों के आस्रव का मूल कारण है । तू संवर के साधन रूप वैराग्य को धारण कर । जिसने यह भेद नहीं समझा अर्थात् राग और वैराग्य के गुण भेद को नहीं जाना उसने अपना नर भव व्यर्थ में गवां दिया । वह नाना प्रकार के धार्मिक क्रिया कलापों जैसे दान, पूजा, शील, जप और तप आदि में प्रवृत्त होता है, किन्तु राग भाव के कारण ये सब उसका संसार वास ही बढ़ाते हैं । राग से विमुख होने पर ही ये सब धार्मिक क्रिया कलाप शिव सुख प्रदान करने वाले हैं --

मन मेरे राग भाव निवार ।
राग चिक्कन तैं लागत है कर्मधूलि अपार ।
राग आस्रवमूल है वैराग्य संवर धार ।
जिन न जान्यौ भेद यह वह गयौ नरभव हार ।
दान पूजा शील जप तप भाव विविध प्रकार ।
राग बिन शिव सुख करत हैं रागतैं संसार ।
वीतराग कहा कियौ यह बात प्रकट निहार ।
सोई कर सुख हेत यानत शुद्ध अनुभव सार ।।[१४]

१३- यानत पद संग्रह, पद २६३
१४- वही, पद ६२

क्रोध भाव अनेक अनर्थों की जड़ है। क्रोधोदय होने से आत्मा की विशुद्ध आत्म-शान्ति भंग हो जाती है। क्रोध आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु है। कवि द्यानत-राय आत्मा को क्रोध-भाव परित्याग करने की पवित्र प्रेरणा देते हैं। वह कहते हैं-- हे आत्मन्! क्रोध क्यों करते हो? क्रोध के आवेश में प्राणी कितने अविवेकपूर्ण कार्य कर डालता है, यह समझ कर आत्म-विवेक से क्रोध को शान्त कर देना चाहिए। मनुष्य अपने कर्मोदय के कारण ही वैसी क्रिया आचरण करता है। अशुभ कर्मों के उदय से ही वह अवांछनीय आचरण करता है। तुम्हारे रोष का मानव की इस अवांछनीय प्रवृत्ति पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता, इसके विपरीत रोष-जन्य अशान्ति के कारण तुम्हें ही दुर्गति के कटु परिणाम भोगने पड़ते हैं। समस्त संसार जानता है कि संगति के अनुसार ही एक दूसरे में गुण- अवगुण आते हैं। इसलिए तुम अच्छाई का व्यवहार करके दूसरों को भी अच्छा बनाने का ही प्रयत्न करो। दूसरों की बुराई देख कर क्रोध मत करो। जैसे वैद्य स्वयं विष-भक्षण करके दूसरे का विष दूर नहीं कर सकता पर वैद्य की मृत्यु ऐसा करने से अवश्य हो जायेगी। वैसे ही क्रोध के वश हो कर दूसरे के व्यवहार या आचरण में सुधार नहीं हो सकता। क्रोध आदि कषाय निगोद वास का कारण हैं। इसलिए क्रोध का त्याग करके क्षमा भाव धारण करना चाहिए, उसी से उद्धार होगा --

रे जिय क्रोध काहे को।
देखो अविवेकि प्रानी क्यों विवेक न धरै।
जिसे जैसी उदय आवै सो क्रिया आचरै।
सरप तू अपनो बिगारै जाय दुर्गति परै।
होय संगति गुन सबनिकों सरब जग उच्चरै।
तुम भले कर भले सबको दुरै तसि मति जरै।
वैद्य पारिष्य हर सकत नहिं आप भखिको मरै।
बहु कषाय निगोद वासा क्षिमा धानत तरै॥

१५- धानत विलास, पद ५६

भागतराय कहते हैं कि करुणा और दया भाव दोनों ही पुण्य संचय के कारण हैं। तू अपने हृदय में करुणा धारण कर। सब जीवों को अपने समान समझ, कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है। तू जिसकी हिंसा करता है उससे तेरी हिंसा ही होती है, तेरे स्वाभाविक गुणों का नाश होता है। सभी दर्शन को मानने वाले जीव दया को प्रधान गुण मानते हैं। यह सब धर्मों में प्रधान है। हजारों लोग उसके विषय में बताते हैं, दया की महिमा बताते हैं, लेकिन कोई विरला ही उसका पालन करता है। पर पीड़ा पाप कर्म है और परोपकार पुण्य का कार्य है। दूसरे को दुःख देने से पाप बंध होता है, दूसरे को सुख देने से पुण्य बंध होता है। जो बात तुझे नहीं रुचती जैसा व्यवहार तुझे अच्छा नहीं लगता वैसी बात और वैसा व्यवहार तू दूसरे के प्रति भी मत कर। यह बात लाखों में एक है। जो व्यवहार अपने को अच्छा नहीं लगता वह दूसरों के प्रति भी मत कर इसी के द्वारा तुझे सुख प्राप्त हो सकता है --

रे भाई करुणा धार रे।
सब जिय आप समान हैं रे घाट बाध नहिं कोय ।
जाकी हिंसा तू करे रे। तेरी हिंसा होय।
छह दरसनवाले कहें रे। जीव दया सरदार।
पाले कोई एक है रे कथनी कथे हजार ।।
आधे दोहे में कह्या रे। कोट ग्रन्थ को सार।
परपीड़ा सो पाप है रे। पुन्य सु परउपकार ।।
सो तू परको मति करे रे। छुरी सु लागे तोय।
लाख बात की बात है रे। भागत ज्यों सुख होय ।।[१६]

भागतराय कहते हैं कि लोभ बड़ा भारी दुर्गुण है यह बड़े-बड़े दुःखों को देने वाला है। इसके दुष्परिणाम का विवेचन करना सम्भव नहीं है। मूर्ख संसारी जीव ही लोभ करते हैं। विद्वान् तथा शिव सुख को चाहने वाले लोभ नहीं करते। ऐसे लोभी

१६- भागत पद संग्रह, पद २६५

जीव घर त्याग करके वन में रहते हैं किन्तु कनक-कामिनी का लोभ नहीं छोड़ते । संसार को आकृष्ट करने के लिए वे व्रतों को धारण करते हैं किन्तु उनका पालन नहीं करते और केवल दिखावा करते हैं । लोभ के वश में हो कर प्राणी जीव हिंसा करता है तथा झूठ और चोरी जैसे दुर्गुणों को भी अपनाता है । स्त्री सेवन करके परिग्रह का विस्तार करता है तथा पांच पापों को करके नरकगति में जाता है । लोभ के वश में हो कर पांच इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता और उन इन्द्रियों से सम्बन्धित पाप कार्य करता है । योगी, यती, गृही, वनवासी, वैरागी, दरवेश तथा संन्यासी अपनी लोभवृत्ति के कारण अपयश ही प्राप्त करते हैं । यश की क्षीण रेखा भी उन्हें छू नहीं पाती । इसलिए लोभ त्याज्य है --

जिनको लोभ महा दुखदाई जाकी सीमा बरनी न जाई ।
लोभ करै मुरख संसारी छांडै पण्डित ज्ञान अधिकारी ।
तजि घरवास फिरै वनमांहीं कनक कामिनी छांडैं नाहीं ।
लोक रिझावन को व्रत लीना व्रत न होय ठगई साकीना ।
लोभवशात् जीव हत डारै झूठ बोल चोरी चित धारै ।
नारि गहै परिगृह विसतारै पांच पापकर नरक सिधारै ।
जोगी जती गृही वनवासी वैरागी दरवेश सन्यासी ।
कहत ज्ञान जसकी नहिं रेखा मानत जिनके लोभ विशेखा ।।[१७]

जब मानव संसार के दुःखों, चिन्ताओं, उत्पीड़नों और विपत्तियों में बुरी तरह से घिर जाता है तब वह इनसे मुक्त होने के लिए छटपटाने लगता है । उसके मन में उन्मुक्ति की चाह इतनी प्रबल रूप से प्रज्वलित हो उठती है कि वह एक पल के लिए भी किसी बन्धन में बद्ध नहीं रहना चाहता । प्रस्तुत पद में यही भावना प्रतिध्वनित हो रही है । बनारसीदास कहते हैं -- न मालूम मन की यह दुविधा कब दूर होगी । वह अवसर कब आयेगा जब मैं इन पामर मनुष्यों की गुलामी से छुटकारा प्राप्त करूंगा और अपने निर्विकार आत्माराम की अलख जगाऊंगा ? न जाने कब हमारे

१७- मानव विलास, पद ६५

नेत्र-चातक घनीभूत अनाय मद की सरस बिन्दुओं का रुचि के साथ पान करेंगे । वह क्षण घड़ी न जाने कब आयेगी जब हमारे परिणामों में समता भाव की जागृति होगी और हमारा चिन्तन आत्म-विशुद्धि की ओर अग्रसर होगा । इसके अतिरिक्त वह अवस्था भी प्राप्त होगी जब हमारे मन में अपने शरीर के प्रति भी ममत्व बुद्धि शेष न रहेगी । न जाने, आत्मा के अन्दर सुगुरु के वचनों के प्रति सरस दृढ़ता कब जागृत होगी और न जाने वह समय कब आयेगा जब आत्मा के भीतर वास्तविक भेद-विज्ञान की उज्ज्वल ज्योति जलेगी तथा वास्तविक सुख की प्राप्ति होगी । इसके सिवाय वह क्षण भी, न जाने, कब आयेगा जब धन के प्रति लेश मात्र भी ममत्व-भाव न रहेगा ? न मालूम, जीवन में वह क्षण कब आयेगा जब मैं घर छोड़ कर बिलकुल एकाकी हो कर वनवासी बनूंगा । पता नहीं वह सुयोग मुझे कब मिलेगा । उस सौभाग्यपूर्ण क्षण पर मैं बलिहारी जाता हूं --

सुविधा कब जैहै या मन की ।
कब निज नाथ निरंजन सुमिरौं तज सेवा जन-जन की ।
कब रुचि सौं पीवै दृग चातक, बूंद अखयपद घन की ।
कब सुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूं न ममता तन की ।
कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दृढ़ता सुगुरु-वचन की ।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ।
कब घर छांडि होऊं एकाकी, लिये लालसा वन की ।
ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलि बलि वा छन की ।।[१८]

आत्मालोचन करने के बाद बानतराय आत्माभिमुख हो कर आत्म कल्याण के विषय में विचार करते हैं । आत्मकल्याण के लिए पर पदार्थों के प्रति मोह का सर्वथा त्याग अनिवार्य है ।उनके मन में भी संसार त्याग के भाव आते हैं , उन्हीं भावों की अभिव्यक्ति वे इस प्रकार करते हैं --

मेरे मन में कब वैराग्य भाव आयेगा, कब ऐसी मानसिक स्थिति होगी

१८- हिन्दी पद संग्रह, पद ८०

जब मैं राज्य और समाज को धिक्कार मारूंगा । इनके फंफट में नहीं फंसूंगा । गृह-वास से उदासीन हो कर वन में निवास करूंगा । मेरा आशा रूपी कांसा कब फूटेगा और कब हृदय से लोभ भाव दूर होगा । अर्थात् मैं कब आशा को त्याग कर लोभ से विमुख होऊंगा ? सभी प्राणियों को अपने समान समझूंगा । इस प्रकार समभाव धारण करके राग-द्वेष रूपी भावों का पूर्णरूपेण त्याग करूंगा । जब मेरा इस प्रकार से भावनात्मक उत्कर्ष होगा और मैं समस्त वैभाविक परिणतियों को त्याग कर स्व-स्वभाव में परिणमन करूंगा वही समय मेरे लिए श्रेयस्कर होगा --

मेरे मन कब ह्वै है वैराग ।
राज समाज अकाज विचारौं छारौं विषय कारे नाग ,
मन्दिर वास उदास होय कैं जाय बसौं वन बाग ,
कब यह आसा कांसा फूटै लोभ भाव जाय भाग ।
आप समान सबै जिय जानौं राग दोष कौं त्याग ।
द्यानत यह विधि जब बनिआवे सोई घड़ी बड़भाग ।।[१९]

द्यानतराय के मन में वैराग्य की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो रही है । इस संसार सागर से पार उतरने के लिये वे व्याकुल हैं । वे कहते हैं -- न मालूम मुझे वह कब सौभाग्य कब प्राप्त होगा जब मैं मुनिव्रत धारण करूंगा ? जब समस्त (बाह्य और आभ्यन्तर) परिग्रहों को तृण केसमान समझ कर त्याग दूंगा और शरीर के प्रति ममत्व भाव नहीं रहूंगा । कब ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा जब मैं बाईस प्रकार के परिषहों को सह कर राग-द्वेष को पूर्ण रूप से त्याग दूंगा ? कब मैं ध्यान रूपी जहाज पर चढ़ कर भव-समुद्र से पार उतरूंगा --

कबहौं मुनिवर को व्रत धरिहौं ।
सकल परिग्रह तिन समतनि के देहादिकौं नेह न करिहौं ।
कब बाईस परीषह सहिकै राग-द्वेष परिहरिहौं ।
द्यानत ध्यान-यान कब चढ़ि के भवदधि पार उतरिहौं ।।[२०]

१९- द्यानत पद संग्रह, पद २४१
२०- वही, पद ५८

दौलत राम के मन में वैराग्य भाव का संचार हो रहा है और वे इस प्रकार अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं --

मेरे कब ऐसे वा दिन की सुघरी ।
तन बिन वसन असन बिन वन में निसरौं नासादृष्टि धरी ।
पुण्य पाप परसौं कब विरचौं परचौं निजनिधि चिरविसरी ।
तज उपाधि सजि सहज समाधि सहौं घाम हिम मेघझरी ।
कब थिरजोग धरौं ऐसो मोहि उपल जान मृग खाज हरी ।
ध्यान कमान तान अनुभव शर हनौं किहि दिन मोह अरी ।
कब तृनकंचन एक गनौं अरु अनिजडितालय डेल दरी ।
दौलत सत गुरुचरन सेव जो पुरवो आश यह हमरी ।।[२१]

दौलतराम कहते हैं कि मुझे किस दिन वह शुभ अवसर प्राप्त होगा जब मैं नग्न दिगम्बर मुद्रा धारण करूंगा और आहार जल की ओर मेरी रुचि ही न होगी । इसके साथ ही किस दिन मैं अपनी दृष्टि को अपनी नासिका की ओर स्थिर करूंगा । कब वह अवसर प्राप्त होगा जब मैं परकीय पुण्य और पाप की परिणतियों से विरक्त हो कर उनमें रागद्वेषमय वृद्धि न करूंगा और चिरकाल से भूली हुई आत्म-निधि की प्राप्ति करूंगा । इतना ही नहीं मेरी आत्मा अपने लक्ष्य के प्रति इतनी संकल्प और निष्ठावान हो जायेगी कि ग्रीष्म, शिशिर और वर्षा की बाधाएं उसे जरा भी टस से मस नहीं कर सकेंगी । मुझे वह अवसर कब प्राप्त होगा जब मैं स्थिर योग धारण करूंगा और उस ध्यान मुद्रा में स्थित मुझे हिरन पत्थर की शिला समझ कर अपनी खाज खुजलावेंगे और वह अवसर भी कब प्राप्त होगा जब मैं ध्यान कमान तान कर आत्मानुभव रूपी बाण से मोह शत्रु का विनाश करूंगा । मुझे कब वह सुअवसर मिलेगा जब तृण और कंचन दोनों ही मुझे एक से मालूम होंगे और मणिरचित प्रासाद और पर्वत की कन्दरा में मुझे भेद की प्रतीति नहीं होगी । अर्थात् इनमें राग-द्वेषमय वृद्धि न करूंगा । कविवर कहते हैं कि सत्गुरु के चरणों की सेवा ही हमारी स्वप्न-माला की पूर्ति करेगी ।

२१- दौलत विलास, पद ६६

इस प्रकार भक्त अपनी भक्ति के चरमोत्कर्ष के रूप में आत्म-साधना में लीन हो कर परमपद को प्राप्त करता है।

आत्मस्वरूप और आत्मानुभव

भागतराय ने आत्मस्वरूप का विवेचन करते हुए लिखा है कि हे भाई, आत्माराम के स्वरूप को देखो। वह छह द्रव्य और नव तत्व ज्ञेय पदार्थों का ज्ञायक है। वह अरिन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनिवर इन पांचों पदों का धारक है। जिसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप आदि हैं और जिसके बराबर कोई नहीं है। ज्ञान और चेतना ही आत्मा की सम्पत्ति है बाकी सब पुद्गल का है। उसकी विभूति केवलज्ञान है अन्य सभी वैभव भ्रम के दास हैं, मिथ्या हैं। एकेन्द्री और पंचेन्द्री पुद्गल हैं। जीव (आत्मा) अतीन्द्री और ज्ञाता स्वरूप है। उस शुद्ध स्वरूप को जानना ही सुखदायक है।

देखो भाई आतमराम विराजे।
छहों दरव नव तत्व ज्ञेय हैं आप सुज्ञायक छाजे।
अरिहंत सिद्ध सूरि गुरु मुनिवर पांचों पद जिहमाहीं,
दरसन ज्ञान चरन तप जिहमें पटतर कोऊ नाहीं।
ज्ञान चेतना कहिये जाकी बाकी पुद्गलकेरी।
केवलज्ञान विभूति जासुके भान विभौ भ्रमचेरी।
एकेन्द्री पंचेन्द्री पुद्गल जीव अतिन्द्री ज्ञाता।
भागत ताही शुद्ध दरव को जानपनों सुखदाता॥[१]

ऐसे आत्मस्वरूप का अनुभव करने से ही शिव पद प्राप्त हो सकता है। भागतराम कहते हैं कि हे भाई आत्म-अनुभव करो। आत्मानुभव के द्वारा जन्म, जरा और मरण का नाश करके अन्तकाल तक जीवित रहो। सच्चे देव, धर्म और गुरु के प्रति श्रद्धा रख कर कुगुरु कुदेव को त्याग दो। छहों द्रव्य और नव तत्वों का मंथन करके सार स्वरूप चेतन को धारण करो। द्रव्य कर्म और नोकर्म से भिन्न करके सूक्ष्म दृष्टि से

१- भागत पद संग्रह, पद १५४

विवेचन करो । मायाकर्म से भिन्न जानकर बुद्धि विलास द्वारा समझने की चेष्टा मत करो । जो अपने आप अपने आप को जान ले वही अनुभव शिव सुख को देने वाला है । और कोई भी उपाय उसके जानने में समर्थ नहीं है, स्वयं द्वारा जो स्वयं को जानकर स्वयं के स्वरूप का अनुभव करता है वही चतुर है --

आतम अनुभव कीजें हो ।
जनम जरा अरु मरन नाशके, अजर अमर पद लीजें हो ।
देव गरम गुरुकी सरधा करिकुगुरु आदि तज दीजे हो ।
इहाँ परव नव तत्व परखके चेतन सार गहीजें हो ।
दरव करम नोकरम भिन्न करि सुधाम दृष्टि धरीजे हो ।
भाव करम तें भिन्न जानिके बुधि विलास न करीजे हो ।
आप आप जाने सो अनुभव आनत शिवका दीजे हो ।
और उपाय बन्यो नहि बनि है करे सो दया कहीजे हो ।।[२]

आनतराय कहते हैं कि हे प्राणी तुम प्रतिपल विचार लो केवल आत्मानुभव ही सार है और सब थोथा है । विषय भोग रूपी सर्प ने तुम्हें काट लिया है जिससे तुम्हारे शरीर में मोह रूपी लहर व्याप्त हो गयी है । इसके प्रभाव से मुक्त होने के लिए ज्ञान ही मन्त्र के समान है इसलिए अब तुम जप, तप आदि साधनों के द्वारा इस मोह लहर को उतारो । जन्म, जरा और मरण जैसे महान रोग इस शरीर के साथ लगे हुए हैं जिनके कारण तुम अनादि काल से अनन्त कष्टों को सहन कर रहे हो । अब इनसे छुटकारा पाने का उपाय करो । अनुभवरूपी औषधि को पीकर तुम भव समुद्र से पार हो जाओ और अमरता प्राप्त कर लो --

आतम अनुभव सार हो अब जिय सार हो प्राणी ।
विषयभोग फणिने तोहि काट्यो मोह लहर चढ़ी भार हो ।।
याको मन्त्र ज्ञान है भाई जप तप लहरि उतार हो ।
जनमजरा मृत रोग महा ये ले दुख सह्यो अपार रे ।

२- आनत पद संग्रह, पद ७२

ज्ञानी अनुभव कोचव पीवे अमर होय भव पार हो ।।[३]

द्यानतराय आत्मचिन्तन की ओर मन को प्रेरित कर रहे हैं । वे कहते हैं कि हे मन अब तू आत्मचिन्तन कर । आत्मा के विषय में चिन्तन न करने के कारण तुझे अब तक इस संसार रूपी वन में भटकना पड़ा है । जो जीव आत्मा में मग्न हो कर परमात्मा की साधना करते हैं वही कर्मजन्य उपाधियों का त्याग करते हैं । जो शीलव्रतों का पालन करके शरीर का शोषण करते हैं वे ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं पा सकते इसलिए सम्यक्ज्ञान का होना आवश्यक है । इस ज्ञान के फलस्वरूप ही अर्हन्त पद की प्राप्ति होती है तथा नरेश, राम, काम, हरि, इन्द्र तथा फणीन्द्र जैसे मन वांछित फल की प्राप्ति होती है । कोई भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता, वह अनुपमेय है । तीनों लोक तथा तीनों काल में आत्म-अनुभव को ही सार तत्व कहा है । देव, धर्म और गुरु भी आत्म अनुभव तथा ज्ञान को मोक्ष की पहली सीढ़ी बताते हैं । आत्मा को जान लेने पर, आत्मानुभव हो जाने पर क्षण भर में ही मोक्ष सुख की प्राप्ति हो जाती है इसलिए मन वचन काय योग द्वारा आत्म-साधना तथा आत्मानुभव करना चाहिए --

कर मन । निज आतम-चिंतौन ।
जिहि बिनु जीव भम्यो जा-जौन ।।
आत्मज्ञान परम जे साधि ते ही त्यागत करम उपाधि ।
गहि व्रत शील करत तन शोस ज्ञान बिना नहिं पावत मोस ।
जिहि तें पद अरहन्त नरेश राम काम हरि इंद फणेश ।
मनवाँछित फल बिहितें होय जिहिकी पटतर अवर न कोय ।।
तिहुं लोक तिहुं काल मंझार वरन्यो आतम अनुभव सार ।
देव धरम गुरु अनुभव ज्ञान मुकति नीव पहिली सोपान ।।
सो जानैं बिन अंध शिराय द्यानत सो गहि मन वच काय ।।[४]

३- द्यानत पद संग्रह, पद ३१
४- वही, पद ५६

आत्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए द्यानतराय कहते हैं -- मैंने आत्मा का स्वरूप जान लिया । वह ज्ञान रूप है । पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल जड़ हैं, मैं चिद्रूप हूं । द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म अलग हैं और आत्मा अलग है । जब पर परिणति का विनाश होगा तभी वास्तविक सुख प्रकट होगा --

आतम जाना मैं जाना ज्ञानसरूप ।
पुद्गल धर्म अधर्म गगन जम सब जड़ मैं चिद्रूप ।
दरव भाव नो कर्म निवारे न्यारो आप अनूप ।
द्यानत पर परनति कब बिनसै तब सुख विलसै भूप ।।[५]

द्यानतराय ने आत्मानुभव और पावस ऋतु का एक सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है । वे कहते हैं कि -- मेरे भीतर ज्ञान का मेघ आ गया है । शुद्ध भाव के बादल घिर कर आ गये हैं, जिससे मोह रूप सूर्य छिप गया है । ये बादल अनहद नाद में घोर-घोर गरज रहे हैं जिससे भ्रम का आताप मिट गया है । समता रूपी बिजली चमकने लगी है और अनुभव के सुख की झड़ी लग गयी है । सत्ता की भूमि पर सम्यक्त्व का बीज शिव पद के खेत में पैदा हो गया है । उच्च भाव रूप सरोवर देख कर सुमन रूप मोर हर्षित हो रहा है । सुमति सखियों से कहती है कि पर प्रदेश से चेतन पिय बहुत दिन बाद घर लौटा है इसलिए यह पावस सुखे बढ़ा आ रहा है --

री मेरे घट ज्ञान घनागम छायो ।
शुद्ध भाव बादल फिर आये सूरज मोह छिपायो ।
अनहद घोर घोर गरजत है भ्रम आताप मिटायो ।
समता चपला चमकनि लगी अनुभौ झड़ कर लायो ।
सत्ता भूमि बीज समकितको शिवपद खेत उपायो ।
उच्च भाव सरोवर देखे मोर सुमन हरषायो ।
पर प्रदेशतें बहु दिन पीछे चेतन पिय घर आयो ।
द्यानत सुमति कहे सखियनसों यह पावस मोहि भायो ।।[६]

५- द्यानत पद संग्रह, पद ३३
६- वही, पद ५३

संसारी प्राणी की प्रवृत्ति प्राय: बहिर्मुखी होती है। वह अपने आसपास की दुनिया में इतना व्यस्त रहता है कि उसे छोड़ कर एक क्षण के लिए भी उसकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी नहीं होती। आत्मस्वरूप को जानने की दिशा में उसका प्रयत्न नहीं होता। परन्तु जिस व्यक्ति को वास्तविक आत्म-भान हो जाता है उसका आत्मानुराग उत्तरोत्तर तीव्र होता जाता है और उसकी प्रवृत्ति निरन्तर अन्तर्मुखी रहने लगती है।

भानतराय की परिणति आज पूर्णतया आत्म-रमण की ओर झुकी हुई है। वे कह उठते हैं -- हम तो अपने आत्मानुभव की ओर लगे हुए हैं। पुद्गल की जितनी भी पर्याय हैं, वे सब आत्म-स्वभाव से भिन्न हैं अत: पर हैं और विनश्वर हैं। इसलिए अज्ञान धन-वैभव और मान-प्रतिष्ठा से किसे प्रेम हो सकता है। हमारी आत्मा में समता-सुख प्रकाशित हो चुका है। अब हमें किसी भी कार्य से प्रयोजन नहीं है। हमें अपने आत्मानुभव की दशा में कोई दुविधा नहीं रही है, हमें अपने आत्मस्वरूप का यथार्थ निश्चय हो चुका है। हमारा समागम अब आत्मा की विशुद्ध परिणति से हो चुका है। हमने भेद-विज्ञान के द्वारा स्व-पर पदार्थों का सम्यक् दर्शन कर लिया है और अपने आत्म-स्वरूप को समझ कर हमारा झुकाव अब उसकी ओर हो चुका है। अब इन चर्म की आंखों से देखने का हमारा कोई अर्थ नहीं रहा है। अब हमें इधर-उधर की पर-पदार्थों की कोई भी चर्चा, वार्ता अच्छी नहीं लगती है। अब तो केवल आत्मा के अनन्त गुणों की ओर ही हमारी रुचि लगी हुई है। आत्माचरण की स्थिति में चैतन्य-पुंज आत्मा से समस्त वैभाविक भाव दूर हो गये हैं। अब अपनी आत्मानुभूति की दशा में हम अविलम्ब ही भव-सागर के पार हुए जा रहे हैं --

हम लागे आतमराम सों।
विनाशीक पुद्गल की छाया, कौन रमै धन-धाम सों।
समता-सुख घट में परगास्यो, कौन काज है काम सों।
दुविधा भाव जलांजलि दीनों, मेल भयो निज आतम सों।
भेद ज्ञान करि निज-पर देख्यो, कौन पिलोके चाम सों।
उरै-पुरै की बात न भावै, लौ लागी गुणग्राम सों।
विकलप भाव रंक सब भाखे करि चेतन अभिराम सों।

धानत आतम अनुभव करिके छूटे सहज धाम सों ।।[७]

धानतराय संसारी जीव को आत्म-अनुभव करने की प्रेरणा देते हैं। वे कहते हैं, हे भाई आत्मानुभव करो। जब तक स्व-पर स्वरूप सम्बन्धी भेद ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक जन्म-मरण के अनन्त दुःख सहने हैं। आगम, शास्त्र पढ़ कर नव तत्वों का वर्णन किया तथा व्रत, तप और संयम को भी धारण किया लेकिन आत्म ज्ञान के बिना ये सभी साधनाद्विरर्थक हैं और योनि संकट से मुक्त कराने में असमर्थ हैं। आत्मज्ञान के बिना इन सब साधनों के द्वारा भी भव-भ्रमण से मुक्ति नहीं मिल सकती। समस्त ग्रन्थ और शास्त्र मिथ्यारूपी अन्धकार को दूर करने के लिए दीपक के समान प्रकाश देने वाले हैं। लेकिन उन मूढ़ पुरुषों के लिए क्या कहा जाए जिन्हें इस संसार में जन्म लेना और मरना है। वे मूढ़ पुरुष जानबूझ कर अज्ञानी बने रहते हैं। जो भव्यजन सुख चाहते हैं उनके लिये यह बात अनुकरणीय है। 'मैं वही हूँ' (सोऽहं) ये दो अक्षर जप कर भव-समुद्र से पार होना सम्भव है। अर्थात् जिस स्वरूप में लीन हो कर इस संसार सागर से पार होना सम्भव है --

आतम अनुभव करना रे भाई।
जब लौं भेद-ज्ञान नहीं उपजै, जनम मरण दुख भरना रे।
आगम पढ़ नव तत्व बखानै व्रत तप संयम धरना रे।
आतम-ज्ञान बिना नहिं कारज, जोनी संकट परना रे।
सकल ग्रन्थ दीपक हैं भाई, मिथ्या तम को हरना रे।
कहा करैं ते अन्ध पुरुष को, जिन्हैं उपजना मरना रे।
धानत जे भवि सुख चाहत हैं, तिनको यह अनुसरना रे।
सोऽहं ये दो अक्षर जपकै, भव-जल पार उतरना रे।।[८]

धानतराय आत्मा के स्वरूप को जानने के लिए संसारी जीव को प्रेरित कर रहे हैं। वे कहते हैं कि हे भाई, आत्मा को जानो, उसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो।

७- धानत पद संग्रह, पद ३६
८- वही, पद २४

आत्मज्योति स्वच्छ और पवित्र दर्पण की तरह है। वह शरीर और कर्मोंसे अलग है किन्तु सबको प्रकाशित करती है। सुप्तावस्था और जागृतावस्था ये दोनों अवस्थाएं विकल्प रूप हैं। शुद्धात्मा निर्विकल्प तथा चिदानन्द और चिद्रूप है। शरीर और वचन से हट कर मन से निज स्वरूप की ओर लौ लगा। इस प्रकार लौ लगाते हुए अपने आपका अनुभव करते हुए मन, वचन, काय सब छूट जाते हैं। इस आत्मानुभव की अवस्था में शुद्ध, बुद्ध, चिदानन्दमय आत्मस्वरूप के अलावा सबकुछ मिट जाता है, वह निर्द्वन्द्व तथा निर्विकल्प अवस्था होती है। छह द्रव्य और नौ तत्वों से भिन्न आत्मतत्व है। जो आत्मानुभव कर लेता है वह अविचल मोक्ष सुख प्राप्त करता है --

आतम जानी रे भाई।
जैसी उज्ज्वल आरसी रे, तैसी आतम जोत।
काया करमन सों छुटी रे, सबको करे उदोत।
शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकल्प रूप।
निर विकल्प शुद्धातमा रे, चिदानन्द चिद्रूप।
तन वच सेती भिन्न कर रे, मनसों निज लव लाय।
आप आप जब अनुभवे रे, तहां न मन वच काय।
छहों द्रव्य नव तत्वतें रे न्यारो आतम राम।
बानत जे अनुभव करें रे, ते पावें शिव धाम।।[६]

बनारसीदास की आध्यात्मिक रचनाएं प्रसिद्ध हैं। उनके लिए कुन्दकुन्द का महान् आध्यात्मिक ग्रन्थ समयसार भी एक आध्यात्मिक नाटक है और रामायण जैसा काव्य भी आत्मा के सांगरूपक में समाहित हो जाता है। वास्तविक राम और राम-कथा तो आत्मा में ही है, अन्य सब तो व्यवहार कथन है। वे कहते हैं कि --
रामायण हृदय में स्थित है। मरमी और ज्ञानी लोग ही उसका रहस्य जानते हैं लेकिन अज्ञानी उसे नहीं समझ सकते। अपनी आत्मा ही 'राम' है तथा ज्ञान गुण लक्ष्मण है, सुमति ही 'सीता' है। शुभोपयोग ही वानरदल है और श्रेष्ठ विवेक ही हनुमान है।

६- बानत पद संग्रह, पद ५१

ध्यान `धनुष टंकार` को सुनकर विषय रूपी दिति (राक्षसों की माता) भाग गई। मिथ्यामत रूपी लंका भस्म हो गयी, `धारणा` (ध्यान) की अग्नि जलने लगी। अज्ञान भाव रूपी राक्षसदल उस अग्नि में जल गये। सम्यग्दर्शन के निकांक्षित आदि आठ गुण रूपी योद्धा लड़े। राग-द्वेष रूपी सेनापति से जूझ कर उन्होंने संशय तथा विभ्रम के किले को चकनाचूर कर दिया। मन विभ्रम रूपी `कुम्भकर्ण` भूमि पर लोटने लगा और विलसने लगा। मन रूपी समुद्र प्रसन्न हो गया। समता `समभाव` का सेतुबंध बांधा गया सक्षमता रूपी हनुमान के आचरण से दुराशा रूपी मंदोदरी मूर्च्छित हो गयी। चर्तुगतियों में परिणमित होने वाली पुद्गल रूपी सेना कम हो गई या नाश हो गया क्योंकि उसका क्षायक श्रेणी रूपी बाण, शक्ति गुण रूपी चक्षुदर्शन को देख कर `उदय` रूपी `विभीषण` दीन हो गया। रावण का (कबंध) धड़ पृथ्वी पर लोटने लगा मानो प्राण-भाव शिरहीन होकर लोटने लगा। इस प्रकार सभी साधुओं के हृदय में सहज संग्राम होता है, यह व्यवहार दृष्टि से रामायण है, निश्चय दृष्टि से केवल (आत्मा) राम है --

विरचै `रामायण` घटमाँहिं।
मरमी होय मरम सो जाने, अरथ माने नाहिं।
आतम `राम` ज्ञान गुन `लछमन`, `सीता` सुमति समेत।
सुमपयोग `बल` वानरदल मंडित, वर विवेक `रण खेत`।
ध्यान `धनुष टंकार` घोर सुनि, गई विषय दिति भाग।
भई भस्मीभिथ्यामत `लंका`, उठी धारणा `आग`।
जरे अज्ञान भाव `राक्षसकुल`, लरे निकांक्षित `सूर`।
जूझे रागद्वेष सेनापति, ससै `गढ़` चकचूर।
अलसत `कुम्भकरण` मन विभ्रम, पुलकित मन `दरयाव`।
थकित उदार वीर `महिरावण`, सेतुबंध समभाव।
मुर्छित `मंदोदरी` दुराशा, सक्ष चरन `हनुमान`।
घटी चर्गति परणति `सेना`, छूटे क्षय गुण `बान`।
निरखि सकति गुन `चक्षुदर्शन`, उदय `विभीषण` दीन।

फिरै `कवंध` सही `रावण` की, प्राण भाव शिरहीन ।
इह विधि सकल साधु घट, अन्तर होय सत्य `संग्राम` ।
यह विवहार दृष्टि `रामायण` केवल निश्चय `राम` ।।[१०]

बनारसीदास अन्तर्दृष्टि की महत्ता बताते हुए मनुष्य को अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं । अन्तर्दृष्टि के अभाव में चतुरज्ञानी प्राणी भी अन्धा कहलाता है और इसके सद्भाव में अन्धा भी चतुरज्ञानी।अन्तर्दृष्टि के प्राप्त होते ही मनुष्य का मन स्वस्थ, प्रशान्त और निश्चल हो जाता है , उसका लक्ष्य स्थिर हो जाता है और एक दिन वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । कवि कहते हैं --

भोले मानव, हृदय की आंखों से देख, वे ही आंखें सच्ची हैं जो अपनी आत्मीय सुख सम्पत्ति का उपभोग करती हैं किन्तु भ्रम की सम्पत्ति हर करती हैं । जो आंखें अमृत-रस की वर्षा करती हैं, भगवान् केवली की वाणी का जो स्पर्श करती हैं और जिन आंखोंसे परमार्थ के दर्शन होते हैं और प्राणी अपने को कृतार्थ समझते हैं, जिन आंखों के कारण केवली के पद की प्राप्ति होती है और जिनके कारण आत्मा कर्म के बन्धन से लिप्त नहीं होता और वे ही सच्ची आंखें हैं जिनके अन्तर् में प्रकट होते ही आत्मा में निरंजन अलख की उज्ज्वल ज्योति जागृत हो जाती है । जो आंखें ज्ञानी जीव के भेद-विज्ञान की प्रतीति और वस्तु के ज्ञान और गुण की जानकारी में सहायक होती है, जिनके द्वारा साधुजन आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार करके ध्यान धारणा आदि की ओर प्रवृत्त होते हैं, जिनके हृदय में जागृत होते ही संसार के समस्त कार्यों से अनुराग पूर्ण आसक्ति हर हो जाती है, मानव मोक्ष-मार्ग की ओर प्रयाण करने लग जाता है और उसका मन विषय विकार से एकदम मुक्त हो जाता है । वे ही हृदय की सच्ची आंखें हैं जिनमें वह सातिशय प्रभा जाज्वल्यमान रहती है जिसे कभी भी किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रहती और जो समाधि के द्वारा अखण्ड वस्तु का यथार्थ परिज्ञान रखती हैं तथा न जिन पर कोई पदार्थ आवरण कर पाता है और न ही कभी जिनके पलक झपकते हैं । जब इन अन्तर्नेत्रों की ज्योति अपने जागृत रूप में इन चर्म चक्षुओं में झलकने लगेगी, ये चर्म चक्षु भी अन्तर्नेत्रमय हो जाएंगे तब इनका यह वैषम्य हर हो जायेगा और इनमें भी समता-रस छलकने लगेगा । जो आंखें अपना

सम्पूर्ण स्वरूप प्राप्त करके लोक और अलोक का दर्शन कराती हैं और समस्त विकल्पों को दूर कर निर्विकल्प पद की प्राप्ति कराती है, वे ही हृदय की सच्ची आँखें हैं --

मोह माहं देखि किये की आँखें ।
जे करषैं अपनी सुख संपति भ्रम की संपति नाखैं ।
जे बरसैं अमृतरस बरसैं, परसैं केवलि बानी ।
जिन आंखिन विलोकि परमारथ, होहिं कृतारथ प्रानी ।
जिन आंखिन्ह में दशा केवलि की, कर्म लेप नहिं लागैं ।
जिन आंखिन के प्राट होत, घट, अलख निरंजन जागै ।
जिन आंखिन सौं निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै ।
जिन आंखिन सौ लखि स्वरूप मुनि, ध्यान धारणा धारै ।
जिन आंखिन के जगे जगत के, लगैं काज सब झूठें ।
जिन सौं गमन होइ शिव सनमुख, विषय-विकार अपूठे ।
जिन आंखिन में प्रभा परम की पर सहाय नहि लेखैं ।
जेइ समाधि सौं तकैं अखंडित, ढकैं न पलक निमेखैं ।
जिन आंखिन की ज्योति प्राटिके, इन आंखिन में भासैं ।
तब इनहूं की मिटै विषमता समता रस परगासैं ।
जे आखैं पूरन स्वरूप धरि, लोकालोक लखावैं ।
अब यह वह सब विकल्प तजिकैं, निर विकल्प पदपावैं ।।[११]

जब आत्मा का वास्तविक स्वरूप जान लिया जाता है तो वह प्राणी किसी का कुछ अहित नहीं करना चाहता । उसका मन उस लोक में विहार करने लगता है, जहां सबके प्रति मैत्री भाव है, और समता है, विश्व-बन्धुता है और एक ऐसा सौम्य वातावरण है, जिसमें वह अपनी दिव्य आत्म-ज्योति के ठीक-ठीक दर्शन का सुयोग लाभ करता है । बनारसीदास भी कुछ ऐसे ही भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं --

---

१०- हिन्दी पद संग्रह, पद ७८

११- वही, पद ७६

हम तो मौन से बैठे हैं । हमारा सबके प्रति मैत्री भाव है । जात के हम सब जन दस दिन के मेहमान हैं , न मालूम किसे कब यहां से चल देना है । इसलिए हम अप्रिय बोली से किसी का मन क्यों दुखायें ? इस समय हम परमार्थ-पथ के अनुसारी हैं और इस परमार्थ रूपी पवन से हमारे समस्त भ्रम के बादल विलीन हो गये हैं । हमारा स्वानुभवरूपी, राधारमण से परिचय हो गया है और हमारी प्रवृत्ति भी एकदम अन्तर्मुख हो गयी है । हमारे अन्तर में अमृत पीने की महिमा जागृत हो उठी है और हमारा मन वमन-सेवन से बिलकुल उचट गया है । अब हमें क्षण-भर के लिए भी अन्य रस अच्छे नहीं मालूम दे रहे हैं , वे सब फीके हो गये हैं । हमारी रुचि केवल आत्माराम के लावण्य पर ही अटकी हुई है । हमने जो अक्षय सुख सम्पत्ति प्राप्त की है उससे हमारा मन अघा गया है, भर गया है, अब हमें किसी भी वस्तु के लिए अपने घर से बाहर जाने की जरूरत नहीं है । हमें अपना सहज आत्मिक भावरूपी गुरु मिल गया है और हम संसार के आवागमन से विमुक्त हो चुके हैं --

हम बैठे अपनी मौन सौं ।
दिन दस के मिहमान जगत जन, बोलि बिगारैं कौन सौं ।
गये बिलाय भरम के बादर परमारथ-पथ-पौन सौं ।
अब अन्तर गति भई हमारी परचे राधारौन सौं ।
प्रगटी सुधापान की महिमा मन नाहिं लगै बौन सौं ।
छिन न सुहाय और रस फीके, रुचि साहिब के लौन सौं ।
रहे अघाय पाय सुख संपति, को निकसै निज भौन सौं ।
सहज भाव सद्गुरु की संगति, सुरझे आवागौन सौं ।।[१२]

बनारसीदास कहते हैं कि हे प्राणी ! तू आत्मा के गुण को जान और पहचान तथा साधु के वचनों तथा सीख को हृदय में धारण कर । भरत चक्रवर्ती छह खण्डों का राजा था किन्तु आत्मगुण को जानकर उन्होंने दीक्षा ली और मुक्त हो गये । प्रसन्नचन्द्र मुनि मन के विकार से उद्वेलित हो गये और नरक का बंध किया

१२- हिन्दी पद संग्रह, पद ७६

किन्तु मन बदलने से उसी क्षण से मोक्षगामी हुए । आत्मशुद्धि के बल पर ही लक्ष्य प्राप्ति सम्भव है । रावण जैसे विषय लोलुप राजा के सम्यक्त्व का उदय होने से तीर्थंकर गोत्र का बंध हुआ । शुक्ल ध्यान धारण करके सुकुमाल मुनि मोक्षगामी हुए । हिंसा का आचरण करने वाले भी आत्मगुण को जानकर तथा आत्म-अनुभव के द्वारा मोक्षगामी हुए । प्रत्यक्ष में भी यह देखा जाता है कि भृंगी (भौंरा) का ध्यान करते करते कीड़ा स्वयं भी भौंरा बन जाता है । आत्मगुण का चिन्तन करते करते आत्मा भी परमात्मा बन जाता है । मन-बंधन से मुक्त कराने का उपाय भी आत्मानुभव ही है --

ज आतम गुण जानि रे आनि साधु वचन मन आनि रे आनि ।
भरत चक्रवर्ति षटखंड साधि,भावना भावति लही समाधि ।
प्रसन्नचन्द्र-रिषि भयो सरीर, मन फेरत फिर पायो मोख ।
रावन समकित भयो उदोत, तब बांध्यो तीर्थंकर गोत ।
शुक्ल ध्यान धरि गयो सुकुमाल, पहुंच्यो पंचमगति तिहिंकाल ।
षिढ़ अहार करि हिंसाचार, गये मुकति निज गुण अवधार ।
देखहु परतख भृंगि क ध्यान, करत कीट भयो ताहि समान ।।
कहत `बनारसि` बारम्बार और न तोहि डुबावणहार ।।[१३]

कवि आत्मा के स्वरूप का ज्ञान करा रहे हैं । वे कहते हैं कि मैंने आत्म साक्षात्कार कर लिया है । वह आत्मा स्पर्श, रस, गंध, वर्ण,तथा नाद से भिन्न है तथा दर्शन ज्ञान आदि गुणों का खजाना है । वह नित्य है, निर्दोष है, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि विकारों से रहित है । उसके क्षुधा, तृष्णा आदि व्याधि नहीं है तथा सुख-दुःख से परे वह वन, पुर और ग्राम से असम्बद्ध है । वह न तो किसी का स्वामी है और न किसी का सेवक है, भाई, पिता और मामा आदि सम्बन्धों से रहित है । अनादि काल से अपने स्वरूप को भूल कर वह पुद्गल रूपी वस्त्र पहन कर संसार में भटकता फिर रहा है । अब जिनगुरु की संगति से मैंने अपना स्थान पा लिया है अब मैं अपने स्वरूप में स्थित हो गया हूं --

---

१३- हिन्दी पद संग्रह, पृष्ठ ८३

मैं देखा आतमरामा ।
रूप फरस रस गंध तें न्यारा दरस-ज्ञान गुनधामा ।
नित्य निरंजन जाकै नाहीं क्रोध लोभ मद कामा ।
दुख प्यास सुख दुख नहिं जाकै नाहिं धन पुर गामा ।
नहिं साहिब नहिं चाकर भाई नहीं तात नहिं मामा ।
भूलि अनादि थकी जग भटकत ले पुद्गल का जामा ।
द्यानत संगति जिनगुरु कीतैं मैंपाया सुख ठामा ।।[१४]

द्यानत आत्मज्योति का दर्शन कर चुके हैं । वे कहते हैंकि हे आत्मा, तेरी कान्ति, तेरी आभा मैंने देखी है । तू निज को जानने वाली तथा समस्त लोक की ज्ञाता है, तेरी शक्ति कम नहीं है, तू अनन्त शक्तियुक्त है । जैसी सिद्ध तथा जिनवर में आत्म ज्योति है वैसी ही मुझ मेंभी है । मुझमें और सिद्ध तथा जिनराज के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है । यह जड़ नहीं है, किन्तु जड़ के वश में हो कर जड़ की संगति करके फिरता रहता है । जग के कार्यों को करने के लिए जग में भ्रमता रहता है, इसकी बुद्धि नादान और भोली है --

हे आतमा ! देखी द्युति तोरी रे ।
निजको ज्ञात लोक को ज्ञाता शक्ति नहीं थोरी रे ।
जैसी जोति सिद्ध जिनवर में तैसी ही मोरी रे ।
जड़ नहिं हुवो फिरै जड़लेवसि के जड़ की जोरी रे ।
जाके काजि करन जग टहलैं द्यानत मति भोरी रे ।।[१५]

दौलतराम कहते हैं कि आत्मा के अनुपम तथा अद्भुत स्वरूप का साक्षात्कार करके, अनुभव करके भव समुद्र से पार उतर जाओ । भरत चक्रवर्ती ने अल्प समय में ही अपनी आत्मा के ध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया तत्पश्चात् संसार के प्राणियों को

१४- द्यानत विलास, पद २७
१५- वही, पद ४१

सम्बोधित करके वे लोक शीर्षस्थ स्थान अर्थात् मोक्ष के गामी हुए । इस आत्मा के स्वरूप को समझे बिना द्रव्यलिंगी मुनि उग्र तपस्या का भार उठाते हैं और नवग्रैवेयक पर्यन्त पहुंच कर फिर भव-समुद्र में गिर जाते हैं । अर्थात् आत्मानुभव के बिना कठिन तपस्या भी सारहीन है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र और तप ये ही संसार में सार तत्व हैं, इन्हीं के आचरण द्वारा मुक्ति मिलना सम्भव है । आत्मानुभव के द्वारा पहले भी भव्यजीव मोक्ष को गये हैं, अब जाते हैं तथा भविष्य में भी जायेंगे यह निश्चित है । करोड़ों ग्रन्थों का सार यही है और जिनवाणी ने भी यही बताया है कि अपनी आत्मा का ध्यान करो और मुक्ति रमा का शीघ्र वरण करो --

आतम रूप अनूपम अद्भुत याही लखें भव सिंधु तरो ।
अल्पकाल में भरत कुंवर निज आतम को ध्याय वरो ।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे लाखिन पायो लोकशिरो ।
या बिन समझे द्रव्यलिंगिमुनि उग्र तपन कर मार मरो ।
नवग्रैवेयकपर्यन्त जाय फिर फेर भवार्णवमाहिं परो ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप येहि जगत में सार नरो ।
भूरज सिद्ध को गये जाहिं अब फिर जैहें यह नियत करो ।
कोटि ग्रन्थ को सार यही है ये ही जिनवानी उचरो ।
दौल ध्याय अपने आतम को मुक्तिरमा तब वेगवरो ।।[१६]

दौलतराम अपनी आत्मा (जीव)से शिवपुर जाने के लिए आग्रह कर रहे हैं क्योंकि वही इसका सच्चा घर है । वे कहते हैं हे जीव ! तुम अपने देश चलो, शिवपुर तुम्हारा मूल स्थान है । चौरासी लाख योनियों में भटकते हुए तुम्हें लेशमात्र सुख की प्राप्ति भी नहीं हुई । अनेक प्रकार के मिथ्यारूपों को अपनाते हुए तुम परदेश में बहुत भटके हो । तुमने विषय आदि कषायों के कारण बहुत दुःख और क्लेश पाये । तिर्यंच नारकी, नर, सुर आदि नाना प्रकार के वेश धारण किये और अनेक योनियों में भटकते रहे । अब सत्गुरु के उपदेश को सुनकर संसार से नाता तोड़ लो और अपने मूल स्थान

१६- दौलत विलास, पद ६७

को प्राप्त करो --

जिया तुम चालो अपने देश शिवपुर थारो ध्रुव थान ,
लख चौरासी में बहु भटके लह्यो न सुख को लेस ।
मिथ्यारूप धरे बहुतेरे भटके बहुत विदेश ।
विषयादिक बहुते दुख पाये भुगते बहुत कलेश ।
भयो तिरजंच नारकी नरसुर करि करि नाना भेष ।
`दौलत राम` तोड़ जग नाता सुनो सुगुरु उपदेश ।।[१७]

मानिकचन्द आत्म-स्वरूप को देखने के लिए संसारी प्राणी को प्रेरित करते हैं।उन्होंने आत्म-स्वरूप का अनुभव किया है। वे उसके स्वरूप के विषय में बतला रहे हैं। वे कहते हैं -- मैंने शुद्ध नय की अपेक्षा से आत्मस्वरूप का दर्शन कर लिया है। आत्म-स्वरूप को ना पहचानने के कारण ही मैंने अब तक इस संसार में अनन्त दुःख पाये हैं। आत्मा कर्म बंध के स्पर्श रहित एक निश्चित रूप है। वह निर्विशेष तथा निराधार है अर्थात् स्वतन्त्र है। पर पदार्थों से भिन्न वह अनुपम है और ज्ञायक है। हृदय भेद-ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाशित होते ही मिथ्यात्व रूपी अन्धकार नष्ट हो गया है। ऐसे भव्य जीवों की मैं बलिहारी जाता हूं जिन्होंने अपने आत्मस्वरूप का अनुभव कर लिया है --

आतम रूप निहारा, सुध नय आतम रूप निहारा हो।
जाकी बिन पहिचानि, जगत में पाया दुःख अपारा हो ।
बंध पर्व बिन एक नियत है निर्विशेष निरधारा हो ।
पर तें भिन्न अभिन्न अनोपम, ज्ञायक चित्त हमारा हो ।
भेद ज्ञान-रवि घट परकासत, मिथ्या तिमिर निवारा हो ।
`मानिक` बलिहारी जिनकी जिन निज घट मांहि सम्हारा हो ।।[१८]

१७- हिन्दी पद संग्रह, पद २६८
१८- वही, पद ३८३

भागचन्द कहते हैं कि जब आत्मा का अनुभव होता है तब और कुछ अच्छा नहीं लगता। आत्मानुभव होने पर अन्य सभी इन्द्रियजन्य रस नीरस हो जाते हैं और रुचिकर नहीं लगते हैं। गोष्ठी और कथा के प्रति कौतूहल समाप्त हो जाते हैं। इस जड़ पुद्गल के प्रति मोह नष्ट हो जाता है। राग और द्वेष रूपी चंचल पंखों से युक्त यह मन रूपी पक्षी मर जाता है। ज्ञान के आनन्द का जो अमृतरस है उससे मन लबालब भर जाता है। यह आत्मानुभव रूपी आनन्द रस हृदय में नहीं समाता। ऐसे आत्म अनुभव को मैं हाथ जोड़ कर सिर झुकाता हूं। यह आत्मानुभव ही मनुष्य का अभीष्ट है --

जब आतम अनुभव आवै, तब और कछू न सुहावै।
रस नीरस हो जात ततक्षिण, अच्छ विषय नहीं भावै।
गोष्ठी कथा कुतूहल विघटे, पुद्गल प्रीति नशावै।
राग दोष जुग चपल पखातुर, मन पक्षी मर जावै।
ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अन्तर न समावै।
भागचन्द ऐसे अनुभव को हाथ जोरि शिर नावै॥[१६]

१६- हिन्दी पद संग्रह, पृष्ठ १४२

साधना, ध्यान और योग

प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्य में ध्यान-योग विषय पर विस्तार से लिखा गया है। भक्ति के सन्दर्भ में प्राकृत तथा संस्कृत में स्वतन्त्र रूप से 'योगि भक्ति' की रचना की गयी है। हिन्दी के जैन कवियों ने उसी परम्परा में ध्यान-योग से सम्बन्धित पदों की भी रचना की है।

इन पदों में संक्षेप में ध्यान विषयक पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। योगी की परिभाषा, ध्यान, मुद्रा या आसन, ध्यान के उपयुक्त स्थान, ऋतुओं के अनुसार ध्यान के योग्य स्थानों का चयन, ध्यान तथा अन्तरंग और बाह्य तप, ध्यान की प्रक्रिया और कर्मनिर्जरा, ध्यान करते हुए योगी का चित्रण, ध्यान का फल इत्यादि की जानकारी इन पदों से प्राप्त हो जाती है। इन पदों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि कवि ने इन पदों में ध्यान करते हुए योगियों का जो चित्रांकन किया है, उससे योगी का सजीव चित्र आंखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है।

तीर्थंकर ऋषभदेव को जैन परम्परा में योग का प्रवर्तक माना गया है। प्रव्रजित होने के बाद उन्होंने जो ध्यान लगाया तो छह माह तक सुमेरु के शिखर की तरह निश्चल, अडिग, अकंप कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ रहे आये। दौलतराम ने उनकी ध्यानावस्था के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं।

भक्ति के बढ़ते हुए सोपान में ध्यान का उन्नत स्थान है। जैन भक्ति की प्रखरता का रूप उस ध्यानावस्था में दिखाई देता है जहां आराध्य और आराधक का द्वैत मिट जाता है, आराधक आत्मलीन हो कर स्वयं अपने परमात्म स्वरूप को प्राप्त करने की स्थिति में पहुंच जाता है। ऐसे योगी का परमात्म स्वरूप को प्राप्त होना निश्चित है। इसीलिए दौलतराम कहते हैं, कि ऐसा योगी अभयपद (मोक्ष) क्यों नहीं पायेगा जिससे फिर उसे संसार में नहीं आना पड़ेगा। जो संशय, विभ्रम तथा मोह को त्याग

कर स्व और पर के स्वरूप को जान ले । परमात्म तत्व चेतन को जानकर कर्म कलंक को दूर करे । जो संसार और शारीरिक भोगों से विरक्त हो कर नग्न वेश धारण करे । मोह विकार का निवारण करके निज आत्मानुभव में चित्त को लगाये । त्रस तथा स्थावर जीवों का वध त्याग कर प्रमाद दशा को दूर करे । रागादि परिणामों के वशीभूत हो कर झूठ न बोले तथा बिना दिये हुए तिनका तक ग्रहण न करे, बाह्य रूप से नारी का त्याग करके अन्तर में चित्त ब्रह्म में लीन रहे । उत्तम आकिंचन धर्म को धारण करके आभ्यंतर और बाह्य दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग करते हैं । पांच समिति और तीन गुप्ति का पालन करते हुए व्यवहार रूप सम्यक्चारित्र को धारण करे । निश्चय से समस्त कषायों से रहित हो कर शुद्धात्मा में स्थित हो जाये । कुसुम तथा कीचड़, सेवक-शत्रु, तृण-मणि, सर्प और माला में समभाव रहे । आर्त तथा रौद्र ध्यान को त्याग कर शुक्ल धर्म ध्यान करे । जिसके अतीन्द्रिय सुख समाज की महिमा का वर्णन करने में इन्द्र भी असमर्थ है, ऐसे योगीश्वर के चरणों का सेवक होने पर अविचल सुख की प्राप्ति होती है --

ऐसा योगी क्यों न अजरपद पावे सो फेर न भव में आवे ।
संशय-विभ्रम-मोह-विवर्जित स्वपरस्वरूप लखावे ।
लख परमातम चेतन को पुनि कर्मकलंक मिटावे ।
अतनभोगविरक्त होय तन नग्न सुभेष बनावे ।
मोह विकार निवार निजातम अनुभव में चित लावे ।
त्रस-थावरवधत्याग सदा परमाददशा छिटकावे ।
रागादिकवश झूठ न भाखे तृणहु न अदत गहावे ।
बाहिर नारि त्यागि अन्तर चिब्रह्म सुलीन रहावे ।
परमाकिंचन धर्मधार सो त्रिविध प्रकार बखावे ।
पंच समिति त्रय गुप्ति पाल व्यवहार चरनमय धावे ।
निश्चय सकल कषायरहित ह्वै शुद्धातम थिर थावे ।
कुसुम पंक दल रिपु तृण मणि व्याल माल सम भावे ।
आरत रौद्र दुध्यान विडारे धर्म-शुक्ल को ध्यावे ।

जाके सुखमाय की महिमा कहत इन्द्र अकुलावै ।
दौल तासपद होय दास सो अविचल ऋद्धि लहावै ।।[१]

दौलतराम कहते हैं -- हे सखि ! (अपनी आत्मा को संबोधन) ऋषियों के अराध्य श्री ऋषभ जिनेश्वर का दर्शन कर । भगवान् ने स्व-पर का परिज्ञान कर पर परिणति का त्याग किया है। प्रभु ध्यानावस्थित मुद्रा में अति शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं -- नेत्र नासिका के अग्रभाग पर स्थित हैं, कामदेव को पराजित कर, मौन रहते हुए भगवान् भले लग रहे हैं। श्वास-पवन से दिशाओं में सुरभि का संचार हो रहा है। श्री अरहन्तदेव पृथ्वी के समान क्षमाशील, मनुष्य, देव, गन्धर्व वन्दनीय, रागादि-दोषरहित तथा पापनाशक हैं। उन्होंने कर्मपाश तथा भ्रम का नाश किया है। सिंह मृग आकीर्ण वनों में निवास कर प्रीति (विश्वबन्धुत्व) की रीति धारण की है। ध्यान अग्नि में कर्म काष्ठ को जला दिया है, सिर पर केश शोभित हैं, अथवा दग्ध कर्मों का धुआं फैल रहा हो। भगवान् जगन्नाथ हैं उन्होंने सुनिवृत्ति धारण करते हुए मानो भव पंक में फंसे हुए रंक जनों के उद्धार को अपनी भुजाएं फैलाई हैं। शरीर कान्ति तप्त कांचन समान है। प्रभु बिना वस्त्र-आभरण मेरुगिरि के शिखरतुल्य स्थिर खड़े हैं। दौलतराम कहते हैं -- भगवान् भव्यों को शिवसुख प्रदान करने वाले हैं, उन्हें हमारी करबद्ध प्रार्थना है --

निरख सखी ऋषिन को ईश यह ऋषभ जिन परखि के स्वपर परसौंज डारी ।
नैन नासाग्रधरि मैन विनसायकर मौनयुत स्वास दिसिसुरभिकारी
वरासन क्षांतियुत नरामरसवरुत विसुत रागादि मद दुर्नित हारी ।
जास श्रमश्वास भ्रमनाश पंचास्य मृग वास करिप्रीति की रीति धारी ।
ध्यानपव मांहि विविधारत प्रजराहिं सिर केशयुत जिमि धुआं दिशि विथारी ।
फसे जगपंक जनरंक तिने काढ़ने किधौं, जगनाह यह बांह सारी ।
तप्त हाटकवरन वसनविन आभरन सो थिर ज्यौं शिखर मेरुकारी ।
दौल को देन शिव धौल जगमौल वे तिन्हें करजोर वंदन हमारी ।।[२]

१- दौलत विलास, पद ५६
२- वही, पद ४४

दौलतराम भगवान्के ध्यानावस्थित स्वरूप का चित्रण करते हुए बता रहे हैं कि किस प्रकार भगवान् ध्यान के द्वारा घातिया कर्मों का क्षय कर रहे हैं --

प्रभु ने ध्यान रूपी कृपाण को धारण करके घातिया कर्मों की ज्येष्ठ प्रकृतियों का नाश कर दिया शेष पचासी भी अब जली हुई रस्सी के समान शक्तिहीन हो गयी हैं। दुष्ट कामदेव रूपी हाथी को मारने के लिए वे शक्तिशाली शेर के समान हैं। उनके चरणोंकी भक्ति भक्त-जनों के दुःख दावानल के लिए मेघ के समान हैं। प्रभु के शरीर में शुभ रक्त व मांस शोभित है तथा उनकी श्वास की समस्त बाधाएं दूर हो गयी हैं। उनकी पलक फपकती नहीं हैं अर्थात् उनकी पलकें स्थिर हैं, केश और नाखून भी नहीं बढ़ते हैं। वे आकाश में विचरण करने वाले हैं। जिनकी शरण के बिना ही अब तक बार-बार जन्म, मरण के दुःखों को सहन किया तथा अनेक कष्ट सहे। उनके चरणों का सेवक मुक्तिपुरी का वासी होता है। अर्थात् भगवद् भक्ति से मोक्ष प्राप्त हो जाता है --

ध्यान कृपान पानि गहि नाशी ज्येष्ठ प्रकृति अरी।
शेष पचासी लाग रही है ज्यों जेवरी जरी।
दुठअनंगमातंगकर है प्रबलंगहरी।
जापद भक्ति भक्त जन दुख दावानल मेघकरी।
शुभ धवल पल सोहै तन में शुभतृषव्याधि टरी।
पलक न फपक अलक नख बढ़त न गति नभ मांहि करी।
जा बिन शरन मरन जरवरधर महा अशात भरी।
दौलत तास पद दास होत है, वास मुक्तिनगरी।।[3]

वे मुनि धन्य है जिन्होंने अपना आत्महित किया। संसार को असार, शरीर को अपवित्र तथा विषयों को विष के समान जानकर महाव्रत (वैराग्य) धारण किया। जो एकाकी विहार करते हैं तथा समस्त परिग्रहों के त्यागी हैं, शुभ अन्य परिषहों को सहन करते हैं। शरीरको तप का साधन मानते हैं। शून्य सदन

3- दौलत विलास, पद ३४

पर्वतों की गहन गुफाओं में पद्मासन में ध्यानावस्थित होते हैं। परभाव से भिन्न अपने आत्म स्वरूप का, मोह त्याग कर के, ध्यान करते हैं। स्व-पर के भेद-विज्ञान द्वारा जिन्होंने निज स्वरूप में अपनी बुद्धि को लगा लिया है, बाह्य पदार्थों की ओर से ध्यान हटा लिया है। दौलतराम कहते हैं कि उन मुनि के चरण कमलों की धूलि से कौन से पाप क्षीण नहीं होते अर्थात् सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं --

धनि मुनि निज आतम हित कीना।
पंच अचार तजे अशुचि विषय विष जान महाव्रत लीना।
एकाविहारी परिगह हारी परिसह सहन करीना।
मूरख जन तपसाधन भाख न लाज गनीपरवीना।
शून्य सदन गिर गहन गुफामें, पदमासन आसीना।
परभावनतें भिन्न आपपद, ध्यावत मोह विहीना।
स्वपरभेद जिनकी बुद्धि निजमें पागी बाह्य लगीना।
दौल तासपद वारिज रजसे किन अघ करे न छीना।।[४]

जगतराम कहते हैं, हे बाला ! (आत्मा को सम्बोधित) उस योगी में अपने चित्त को लगाओ जो योगी संयम की डोरी से शुक्ल शील की लंगोटी को धारण किये है। संयम और शील जिसमें एकाकार हो गये हैं। जो ज्ञान की गुदड़ी को धारण किये है तथा वृद्ध आसन में लीन है। अलखनाथ (अदृष्ट परमात्मा) का शिष्य हो कर जो मोह का नाश करता है। धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान दोनों मुद्राओं को धारण करता है जिसका वर्णन करना असम्भव है। क्षमा को धारण करता है और करुणा का नाद बजाता है। ज्ञान का दीपक जला कर चेतन का अलख जगाता है। अष्ट कर्मों के काठ की धूनी रमाता है तथा ध्यान की अग्नि जलाता है। उत्तम क्षमा की भस्मीको मन में लगाता है। इस प्रकार योगी ध्यान के सिंहासन पर बैठ कर मुक्ति-पुरी को जाता है। बीस रत्नों के आभूषण धारण करके ऐसे मुनि फिर जग में नहीं आते --

---

४- दौलत विलास, पद ६४

ता जोगी चित लावो मोरे बाला ।
संजम डोरी शील लंगोटी, धुलधुल, गाठ लगावे मोरे बाला ।
ध्यान गुदड़िया गल विच डाले, आसन दृढ़ जमावे मोरे बाला ।
अलखनाथ का चेला हो कर मोह का कान फड़ावे मोरे बाला ।
धर्म शुक्ल दोऊ मुद्रा डाले, कष्ट पार नहीं पावे मोरे बाला ।
क्षमा की सीप गले लगावे, करुणा नाद बजावे मोरे बाला ।
ज्ञान गुफा में दीपक जोके चेतन अलख जगावे मोरे बाला ।
अष्ट कर्म काठ की धुनी, ध्यान की अगनि जलावे मोरे बाला ।
उत्तम क्षमा जान भस्मी को, शुद्ध मन अंग लगावे मोरे बाला ।
इस विधि जोगी बैठ सिंहासन, मुक्ति पुरी को पावे मोरे बाला ।
बीस बाइसणधार गुरु ऐसे फेरी न जग में आवे मोरे बाला ।।[५]

ध्यानावस्थित योगी को देख कर जगतराम का मन श्रद्धा से भर जाता है। ऐसे योगी के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करते हुए वे कहते हैं -- देखो, योगी ने कैसा ध्यान लगा रखा है। इनका वेश दिगम्बर है तथा दोनों हाथ नीचे की ओर हैं, वे कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित हैं। इनकी दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर लगी है। क्षुधा, तृष्णा आदि परीषहों को इन्होंने जीत लिया है और ये अपनी आत्मा के रंग में रंगे हैं। विषय, कषायों का त्याग करके ये धैर्य के साथ कर्म शत्रु से लड़ रहे हैं। यद्यपि तप के कारण बाहर से शरीर मलिन, कमजोर दिखाई देता है, अन्तरंग में उज्ज्वल आभा है। ऐसे साधु के ध्यान को देख कर मुंह से स्वयं ही `नमो नमो` शब्द निकलने लगते हैं। हृदय श्रद्धा से भर जाता है --

कैसा ध्यान धरा है, री जोगी ।
नाभ रूप दोऊ हाथ भुलाये, नासा दृष्टि धरा है ।
क्षुधा तृषादि परीसह विजयी, आतम रंग पग्या है ।
विषय कषाय त्यागि धरि धीरज, कर्मन संग अड्या है ।

५- हिन्दी पद संग्रह, पद १२०

बाहिर तन मलीन सा दीखत, अन्तरंग उजला है ।
जगतराम ससि ध्यान साधु को, नमौ नमौ उचरा है ।।[६]

दौलतराम आध्यात्मिक साधना में रत तपस्वी मुनियों की वन्दना करते हुए कहते हैं कि वे मुनि धन्य हैं जिनकी लगन मुक्ति की ओर लगी है । ऐसे मुनि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र को धारण करके भ्रमरूपी चोर को भगाते हैं । वेसुन्दर दिगम्बर मुद्रा युक्त हैं तथा निर्जन सदन और गिरि कन्दराओं में ध्यान लगाते हैं । वे तृण तथा स्वर्ण, शत्रु और मित्र में स समभाव रखते हैं । निन्दा तथा स्तुति में भी वे समभाव रखते हैं । समस्त सांसारिक सुखों की इच्छाओं का त्याग करके आत्म बल द्वारा वे दोनों प्रकार के (आन्तरिक तथा बाह्य) कठोर तप करते हैं । परम वैराग्य भाव रूपी वज्र से कठोर कर्मों को नष्ट करते हैं । यद्यपि तपस्या के कारण वे शरीर से दुबले हैं लेकिन उनके आत्मतेज में तनिक भी क्षीणता नहीं आई है । वे मोह के झकोरों को नष्ट करते हैं । तपस्या के द्वारा जग के ताप को दूर करते हैं तथा संसार के प्राणियों रूपी कुमुद के लिए चन्द्रमा के समान हैं । दौलतराम रूपी चकोर के मन को प्रसन्न करने वाले हैं --

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिव ओरनै ।
सम्यग्दर्शनज्ञानचरन-निधि धरत हरत भ्रमचोरनै ।
यथाजातमुद्रायुत सुन्दर, सदन विजन गिरिकोरनै ।
तृन कंचन अरि स्वजन मित्र सम, निंदन और निहोरनै ।
अन्तर बाह्य सकल तजि वल सजि, करत द्विविध तप घोरनै ।
परम विराग भाव फरसे नित, झरत करम कठोरनै ।
क्षीन शरीर न क्षीन चिदानन, मोहत मोहझकोरनै ।
जगतपहर मवि कुमुद निशाकर मोदन दौल चकोरनै ।।[७]

६- हिन्दी पद संग्रह, पद ११८
७- दौलत विलास, पद ६२

दौलतराम कहते हैं कि वे मुनि धन्य हैं जिन्होंने इस भाव को पहचान लिया है। जिन्होंने शरीर सपाने को इच्छित प्राप्ति माना तथा पुण्य उदय को भी दुःखस्वरूप समझा। एकाकी विहार करते हुए भी जो सब जीवों के कल्याणकारी हैं तथा जिन्होंने त्याग को ही महोत्सव माना। सभी भौतिक सुखों का त्याग करके राग-द्वेष के त्याग को ही सारभूत सुख माना अथवा सुख के सार को जानकर राग-द्वेष का त्याग किया। आत्मस्वभाव चिन्तन करके पुनीत सम्यग्ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र को अमनीनिधि माना। दौलतराम प्रश्न करते हैं कि कौन से सुख के लिए उन्होंने मुनि वेश धारण किया, फिर स्वयं ही उत्तर देते हैं कि उन्होंनेसुखों में श्रेष्ठ शान्ति-रस का पान किया --

धनि मुनि जिन यह भाव पिछाना।
तन व्यय वांछित प्रापति मानी, पुण्य उदय दुख जाना।
एक विहारी सकल ईश्वरता, त्याग महोत्सव माना।
सब सुख को परिहार सारसुख, जानि रागरुष माना।
चिस्वभाव को चिन्त्य प्रान निज, विमल ज्ञानदृगसाना।
दौल कौन सुख जान लह्यो तिन करो शान्ति रसपाना।।[८]

मुनिवन ध्यान के स्वरूप का चित्रण करके आत्मध्यान द्वारा जीवों को मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं -- हे प्राणियों ऐसा ध्यान लगाओ जिससेस्वर्ग तथा मुक्ति दोनोंकी प्राप्ति हो जाये। आत्म-ध्यान में लीन हो जाओ जिससे आगे कर्मों का बन्धन न हो तथा पिछले कर्म-बन्धन भी छूट जायें। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि नवीन कर्मों का आस्रव बन्द हो जाये तथा पूर्व कर्मों का संवर हो जाये। इष्ट और अनिष्ट की कल्पना को छोड़ कर सुख तथा दुःख में समभाव रखो। पर पदार्थों से ममत्व त्याग कर निज आत्मा में लीन हो जाओ। आत्म-ध्यान द्वारा अपवित्र शरीर की संगति का त्याग करके जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाओ। अपने शुद्ध चिदानन्द आत्मस्वरूप की प्राप्ति द्वारा मुक्तिपुरी में निवास करो --

---

८- दौलत विलास, पद ६३

ऐसा ध्यान लगावो भव्य जासो सुरग मुक्ति फल पावो जी ।
जामैं बंध पर नाहिं आगैं पिछले बंध हटावो जी ।
इष्ट अनिष्ट कल्पना छांडो सुख दुख स्याहि भावो जी ।
पर वस्तुनिसौं ममत निवारो निज आतम लौ ल्यावो जी ।
मलिन देह की संगति छूटे जामन मरन मिटावो जी ।
कहै विद्यानन्द भुवन सुनै केशिपुरवास लहावो जी ।।[९]

मुनि की आचारगत विशेषताओं का विवेचन करते हुए बनारसीदास ऐसे मुनि के चरणों में वन्दना करते हैं। वे कहते हैं -- मुझे वन में ऐसे मुनिवर के दर्शन हुए जिनके मन में लेशमात्र भी राग-द्वेष नहीं है। वे मुनिवर वैराग्य भावना से वृक्ष के नीचे साधना करते हुए शरीर पर वर्षा की धार को सहन करते हैं। वे मुनि शीत ऋतु में चौड़ी, जंगल में, नदी के किनारे आत्म-ध्यान में लीन होते हैं तथा ग्रीष्म ऋतु में पर्वत की चोटी पर ध्यानावस्थित होते हैं। ऐसे कठोर तप करने वाले मुनिवर के चरणों में मैं श्रद्धा से नमन करता हूं --

ऐसे मुनिवर देखे वन में जाके राग द्वेष नहि मन में ।
विरक्त भाव वृक्ष के नीचे झेलें सहैं वरषा तन में ।
कबहूं जाड़ जंगल नदी किनारे ध्यान धरें वो मन में ।
गिरवर मरुवत शिखर के ऊपर ध्यान धरे ग्रीष्म में ।
ऐसे मुनिवर देख बनारसि नमन करत चरणन में ।।[१०]

कवि मुधरदास भी आभ्यान्तर तथा बाह्य दोनों प्रकार के तप करने वाले परोपकारी दिगम्बर मुनि के दर्शनों के अभिलाषी हैं। वे कहते हैं कि मुझे ऐसे परोपकारी मुनिवर के दर्शन कब होंगे जो दिगम्बर साधु हैं, वस्त्रों से रहित नग्नवेशधारी हैं तथा संवर के आभूषण धारण करने वाले हैं। जिनकी दृष्टि में कंचन और कांच एक

९- भुवन विलास, पद ५८

१०-बनारसी विलास, पृ० २२

हैं तथा शत्रु तथा मित्र में जो सम भाव रखते हैं। महल, श्मशान, मृत्यु और जीवन तथा प्रशंसा और गाली में जो समभाव रखते हैं। सम्यग्ज्ञान रूप पवन सेतपोरूप अग्नि का प्रज्वलन कर वे जीव रूप सुवर्ण के काय में संलग्न कालिमा को दग्ध करने वाले हैं। 'भूधरदास' उनके चरणों में करबद्ध प्रणाम निवेदन करते हुए कहते हैं कि जब उनका दर्शन हो, वह दिन अशेष भाग्योदय की सूचना है। उस पुण्य दिवस की बलिहारी --

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपकारी।
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर संबर भूषणधारी।
कंचन काच बराबर जिनके ज्यों रिपु त्यों हितकारी।
महल मसान मरन अरु जीवन सम गरिमा अरु गारी।
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल तप पावक परजारी।
सेवल जीव सुवर्ण सदा वे काय-कालिमा टारी।
जोरि जुगल कर भूधर विनवै तिन पद ढोक हमारी।
भाग उदय दरसन जब पाऊं ता दिन को बलिहारी।।[११]

भगवान् ऋषभदेव ने राज्य को त्याग कर वैराग्य धारण कर लिया है। ध्यानावस्थित अवस्था में वे मेरु के समान स्थिर हो गये हैं और कर्मों का नाश कर रहे हैं। उन्हीं की भक्ति भावना से प्रेरित हो कर धानतराय कहते हैं -- नाभिराजा के पुत्र, अहा में वंदनीय ऋषभदेव राज्य और समाज को त्याग कर वन में विचरण कर रहे हैं। उन्होंने कामका नाश कर दिया है तथा वे निर्ग्रन्थ और गुणयुक्त हैं। इन्द्रियों के मोह को त्याग कर उन्होंने समस्त कषायों को त्याग दिया है। उन्होंने अपनी आत्मा से प्रेम किया है। वे राग-द्वेष को छोड़ कर मोक्ष मार्ग का पोषण कर रहे हैं। विषयों का शोषण करके अर्थात् विषयों का त्याग करके वे कर्म समूह का नाश कर रहे हैं। ध्यानमुद्रा में उनका शरीर मेरु के समान स्थिर हो गया है, मन ध्यानमय हो गया है। उनके इस स्वरूप को देख कर इन्द्र, धरणेन्द्र आदि भक्ति भाव से उनकी चरण वन्दना करते हैं --

---

११- भूधरविलास, पद ५१

देखो नाभिनन्दन जगवंदन मदन भंजन गुन निरंजन राजको समाज त्याज वन विचरत ।
इन्द्रनिसौं नेह तोरि सकल कषाय छोरि आतमसौं प्रीत जोरि धीरज धरत ।।
राग दोष मोषकर मोषभाव पोष कर पोष विषैं सोष करि करम हरत ।
धानत मेरु समान थिर तन मन ध्यान इन्द्र धरनिंद्र आनि पायन परत ।।[१२]

धानतराय योगी की विशेषता बताते हुए कह रहे हैं कि ऐसा योगी ही कर्मों की रेखा को मिटा सकता है जो निज में निज स्वरूप को पहचान ले और आत्म साधना करे ।ऐसा योगी नये कर्मों के बंध को रोकता है तथा पूर्वकृत कर्मों को नष्ट करता है । इस प्रकार वह कर्म के कर्ज को चुकाता है और आगे के लिए कर्म के कर्ज को नहीं करता अर्थात् कर्मबन्ध नहीं करता । वह योगी संवर सहित ज्ञान युक्त तप के द्वारा अपने उदयगत कर्मों के प्रभाव को नष्ट कर देता है । कर्म फल देने से पूर्व ही नष्ट हो जाते हैं । ध्यान रूपी तलवार से मोह रूपी शत्रु का नाश करके वह योगी मुक्ति-वधू के सुन्दर मुख का सौन्दर्यपान करता है अर्थात् मुक्तिवधू का वरण करता है --

सोई कर्म की रेखपै मेख मारै आपमें आपको आप धारै ।
नयो बंध न करै बंध्यो पूरब झरै करज काढ़े न देना विचारै ।
उदय बिन दिये गल जात संवर सहित ज्ञान संजुगत जब तप संभारै ।
ध्यान तरवारसौं मार अरि मोहको मुकति तिय वदन धानत निहारै ।।[१३]

धानतराय कहते हैं कि योगी कर्मों को पेल कर, नष्ट करके, ज्ञान दशा में स्थित हो कर आनन्द का अनुभव करता है । वह सुख-दुःख दोनों स्थितियों में सम-भाव रखता है । द्रव्य को गुण,पर्याय सहित समझ कर पर-परिणामों को दूर करता है । निज स्वरूप में रमण करता है । ज्ञानस्कंद, चिदानन्द स्वरूप आत्मा का अनुभव करता है --

कर्मनिको ऐसे ज्ञान दशा में खेले ।

१२- धानत पद संग्रह, पद १५७
१३- वही, पद ३०६

सुख दुख भावे लेश न पावे समता रससों ठेलें ।
सुखरस गुन परजाय समझके पर-परिनाम धकेलें ।
आनंदकंद चिदानंद साहब आनत अंतर फेलें ।।[१४]

आनंदराय सच्चे साधु की चारित्रात विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे साधु धन्य हैंजो वन में रहते हैं । जो शत्रु-मित्र को सम-भाव से देखते हैं तथा जिनके दर्शन मात्र से ही पाप दूर हो जाते हैं । वे अट्ठाइस मूल गुणों को धारण करते हैं तथा मन, वचन, काय के व्यापारों के प्रति सचेत रहते हैं । वे ग्रीष्म ऋतु में पर्वत के शिखर पर तप करते हैं तथा शीत ऋतु में नदी के किनारे ध्यान लगाते हैं, पावस ऋतु में वर्षा की बौछारों को सहन करते हैं, किसी भी प्रकार की आकुलता उनके मन में नहीं होती । वे क्रोध, मान, छल तथा लोभ आदि कषायों से सर्वथा मुक्त होते हैं तथा राग-द्वेष भावों से भी निर्लिप्त रहते हैं । वे अमल, अखंडित, चिद्गुण युक्त ब्रह्मज्ञान में लीन रहते हैं, अर्थात् आत्म-गुण का चिन्तन तथा अनुभव करते हैं । वे साधु ही आठ कर्मों के काष्ठ को जला कर केवल पद को प्राप्त करते हैं अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करते हैं । उनके गुणगान द्वारा संसारी प्राणी अपने दु:खों का नाश करके मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं --

धनि ते साधु रहत वन माहीं ।
शत्रु-मित्र सुख दुख सम जानें दरसन देखत पाप पलाहीं ।
अट्ठाइस मूल गुण धारे मन वच काय चपलता नाहीं ।
ग्रीष्म ऊँचशिखर हिम तटिनी पावस बरसा अधिक सहाहीं ।
क्रोध मान छल लोभ न जानें राग दोष नाहीं उन पाहीं ।
अमल अखंडित चिद्गुण मंडित ब्रह्मज्ञानमें लीन रहाहीं ।
तेई साधु लहैं केवल पद आठ काठ दह शिवपुरी जाहीं ।
आनत भवि तिनके गुण गावें पावें शिव सुख दु:ख नसाही ।।[१५]

१४- आनत पद संग्रह, पद ६२
१५- वही, पद २५

द्यानतराय ध्यानस्थ मुनि की वन्दना करते हुए कहते हैंकि हे भाई, वे मुनि धन्य हैं जो ध्यान लगा कर स्थिर खड़े हुए हैं। वे अपने ध्यान में इतने लीन हैं कि उन्हें सांसारिक कष्टों और उपसर्गों का कुछ भान ही नहीं होता। वर्षा की तेज धार मूसल के धार के समान लगती है तथा बिजली भी भयंकर शोर करती हुई कड़क रही है किन्तु मुनि अडिग हैं। ऐसी अंधेरी रात में सारेप्राणी भयभीत हैं किन्तु मुनि अपने कर्मों का नाश कर रहे हैं। चारों दिशाओं में भारी शोर करती हुई तेज हवा चल रही है। बादल भी घुमड़-घुमड़ कर गर्जना कर रहे हैं। मच्छर तथा डाँस अनेक प्रकार से पीड़ित करते हैं किन्तु ध्यानस्थ मुनि अपनी आत्म-साधना में रत हैं --

भाई धनि मुनि ध्यान लगायके खरे हैं।
मूसल धारसी धार परै है बिजुरी कहकत शोर करै हैं,
रात अंधेरी लोक डरैं हैं साधु जी आपनि करम हरे हैं।
झंझां पवन चहुं दिशि बाजैं बादर घुम घुम अति गाजैं।
डंस मसक बहु दुख उपराजैं द्यानत लाग रहे निज काजैं।।[१६]

दौलतराम भगवान् की आदिनाथ की ध्यानस्थ मुद्रा से अत्यधिक मुग्ध हैं। वे भगवान् की ध्यानस्थ मुद्रा का भावपूर्ण शब्दों में वर्णन करते हुए कहते हैं -- देखो, भगवान् आदिनाथ कितना सुन्दर ध्यान लगाए हुए हैं। अपने एक हाथ के ऊपर दूसरे हाथ को रख कर किस मनोहर ढंग से अपने आसन पर स्थिरता के साथ विराजमान हैं। भगवान् ने जगत की विभूति को भस्म जैसी निःसार समझ कर छोड़ दिया है। अब वे अपने आत्म-चैतन्य की आनन्दानुभूति में तन्मय हैं। उनकी श्वास से सुगन्ध निकल रही है, वे सर्वथा दिगम्बर हैं, उनकी दृष्टि नासिका पर अटकी है। भगवान् की देह कंचन जैसी चमक रही है और मन अपने ध्येय से जरा भी इधर-उधर चलित नहीं हो रहा है। ऐसा मालूम देता है जैसे यह सुमेरु की तरह अडोल हो। भगवान् की इस सहज शान्ति के प्रभाव से सांप-मोर और सिंह-हिरन जैसे जंतु अपना जाति-वैर भूल कर भगवान् की शरण में बैठे हुए हैं और आनन्द-सुधा का पान कर रहे हैं। भगवान् ने शुद्ध उपयोग -

---

१६- द्यानत पद संग्रह, पद २२३

विशुद्ध चैतन्यानुभूतिरूपी अग्नि में आठ कर्म रूपी समिध-सामग्री का होम कर दिया है और उनकी श्यामल उड़ती हुई अलकावलि इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो उस समिध-सामग्री के होम का धुआं ही घनीभूत हो कर उड़ रहा हो। भगवान् की दृष्टि में जीवन-मरण, लाभ-अलाभ और तृण-मणि के प्रति कोई राग-द्वेष नहीं है -- समस्त इष्ट-अनिष्ट वस्तुओं में उनकी सम-बुद्धि है। सुर, नर और नागेन्द्र उनके चरणों में शिर झुकाते हैं और विश्व उनका यशोगान कर रहा है --

देखो जी आदीश्वर स्वामी कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजे आसन थिर ठहराया है।
जगत विभूति भूति सम तजिकर निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा आशावासा नासादृष्टि सुहाया है॥
कंचन बरन चले मनरंच न सुरगिर ज्योंथिर थाया है।
जास पास अहिमोर मृगीहरि जाति विरोध नसाया है।
शुभ उपयोग हुताशनमें जिन वसुविधि समिध न जलाया है।
श्यामलि अलिकावलि शिरसोहैं मानों धुंआ उड़ाया है॥
जीवन मरन अलाभ लाभ जिन तृन मनिको सम भाया है।
सुर नरनाग नमहिं पद जाके 'दौल' तास जस गाया है॥[१७]

१७- दौलत विलास, पद २